पुरोवचन

प्रसाद-काव्य पर जो दो-चार समीक्षात्मक पुस्तकें उपलब्ध होती हैं, उनसे भिन्न यह पुस्तक आपके हाथों में देते हुए हमें विशेष हर्ष हो रहा है। हमें अनुभव होता है कि थोड़े में बहुत सी बातें कहने में हमें सफलता प्राप्त हुई है। एक-एक शब्द तौल-तौल कर लिखा गया है ताकि २०० पृष्ठों की सीमा के भीतर ही हम प्रसाद की कविताओं का सम्पूर्ण ज्ञान करा दें। उपसंहार रूप में केवल अंतिम अध्याय में कुछ-एक पहले की कही हुई बातों की आवृत्ति हो गई है। ऐसा जान-बूझ कर पाठकों के हित के लिए किया गया है।

प्रायः आलोचक संभवतः यह मान कर चलते हैं कि उनके पाठक ने साहित्यकार की सभी कृतियों का अध्ययन कर रखा है—इसीलिए उनकी समीक्षा आलोच्य कृतियों का परिचय कम और उनका आलोचनात्मक विवरण अधिक देती है, जिससे साधारण पाठक के मस्तिष्क में बात पूरी तरह उतरती नहीं है। वह सिद्धान्त और वाद के पचड़े में उलझ कर रह जाता है। हमने प्रसाद-काव्य का सर्वांगीण परिचय कराते हुए उसका विवेचन प्रस्तुत किया है। प्रसाद की कोई कविता, उसका महत्त्व सामान्य दृष्टि से भले ही कुछ भी न हो, हमने अछूती नहीं छोड़ी। यही इस पुस्तक की विशेषता है। यही इसकी उपादेयता है।

१०, दरभंगा रोड,
इलाहाबाद

हरदेव बाहरी
मई, १९५८

विषय-सूची

अनिवार्य समझा जाता है।

जयशंकर प्रसाद की आरम्भिक कृतियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का, इसके बाद द्विवेदी-युग का, और प्रौढ़ कृतियों में कालिदास, टैगोर, शेले आदि महाकवियों का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता हैं, एवं प्रौढ़तम काव्य में उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व उभर कर आया है। इसी बात को यों कहा जा सकता है कि प्रसाद भारतेन्दु का अवतार थे, वे द्विवेदी-युग की उपज थे, और युगप्रवर्त्तक अथवा साहित्यस्रष्टा के रूप में उनका खड़ी बोली हिन्दी साहित्य में वही स्थान है जो संस्कृत में कालिदास का, अथवा बँगला में रवीन्द्रनाथ टैगोर का और अंग्रेजी में शेले का।

भारतेन्दु और प्रसाद दोनों का जन्म काशी में प्रतिष्ठित वैश्य कुलों में हुआ। दोनों के पिता संस्कृत के बड़े भक्त, दानी, मानी, सच्चरित्र रईस थे। दोनों के माता-पिता इनकी छोटी उम्र में ही दिवंगत हुए और परिवार का बोझ इनके कोमल कंधों पर आ पड़ा। भारतेन्दु पाँच वर्ष के थे तो उनकी माता का और दस वर्ष के हुए तो पिता का देहान्त हो गया। प्रसाद के पिता बारह वर्ष की अवस्था मे और माता पन्द्रह वर्ष की अवस्था में चल बसीं। दोनों की शिक्षा अधिकतर घर पर हुई। वे कुशाग्रबुद्धि थे और स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र थी कि बचपन में ही कई ग्रन्थ कंठस्थ कर लिये थे। संस्कृत, अंग्रेजी और उर्दू पढ़ाने वाले उनके अलग-अलग शिक्षक थे। प्रसाद जी के एक मित्र श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा का कहना है कि "आठ नौ वर्ष की अवस्था ही में उन्होंने अमरकोश और लघुकौमुदी कंठस्थ कर ली थी।" बाद में उन्होंने उपनिषद्, पुराण, वेद और दर्शन भी पढ़े। तभी से प्रसाद के विचार दार्शनिक होने लगे और वे भारतीय धर्म और संस्कृति के उपासक बन गये। दोनों के जीवन मे वैभव, विलास और ऐश्वर्य रहा। उसी में उनकी अधिकतर

घनराशि चुक गई और बाद में बड़े-बड़े आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा। किन्तु उन्होंने बड़े धैर्य के साथ जीवन-निर्वाह किया। प्रसाद जी को अपने व्यवसाय में भी इतनी हानि हुई कि वे कई वर्ष ऋणग्रस्त रहे। 'कामायनी' में मनु द्वारा स्वर्ग का जो विगत वैभव वर्णित किया गया है वह वास्तव में जयशंकर प्रसाद के अपने घर के वैभव की स्मृतिमात्र है। प्रसाद जी के सामने उनके निकट के बन्धु मर मर गये—पिता बाबू देवीप्रसाद, माता जी, बड़े भाई शम्भुरतन जी और दो पत्नियाँ। उनका स्नेह खण्डित रहा। आर्थिक स्थितियों ने उनको विपन्न और विषण्ण कर दिया। 'हंस' के आत्मकथांक (१६३२ ई०) में उन्होंने स्वयं लिखा था—

मधुप गुनगुनाकर कह जाता कौन कहानी यह अपनी।
मुरझाकर गिर रहीं पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी।
... ...
तब भी कहते हो—कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती।
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे यह गागर रीती।
... ...
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की।
अरे खिलखिलाकर हँसते होने वाली उन बातों की।
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया।
आलिङ्गन में आते-आते मुसकाकर जो भाग गया।
जिसके अरुण कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में।
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में।
उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पन्था की।
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कन्था की?
छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ!
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ!

सुनकर क्या तुम भला करोगे—मेरी भोली आत्मकथा ?
अभी समय भी नहीं—थकी सोई है मेरी मौन व्यथा ॥

प्रसाद जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व और उनके अतीत जीवन के वैभव की स्मृति तथा बाद के जीवन की सरलता, विषण्णता और वेदना इस आत्मकथा में छिपी है।

भारतेन्दु और प्रसाद हिन्दी के युगप्रवर्त्तक साहित्यकार हैं। हिन्दी साहित्य के 'भारतेन्दु युग' और 'प्रसाद युग' इनके नामों को अमर रखेंगे। बाल्यकाल ही से दोनों की प्रवृत्ति साहित्य-रचना की ओर रही है। भारतेन्दु छः वर्ष के थे और प्रसाद दस वर्ष के, जब उन्होंने अपना-अपना पहला पद्य बना कर सुनाया था। बाद में उनकी काव्य-निर्झरिणी अनवरत रूप से बहती रही। दोनों की प्रतिभा बहुमुखी थी। भारतेन्दु ने 'रामलीला' नामक चंपू लिखा, प्रसाद ने 'उर्वशी' तथा 'बभ्रुवाहन' दो चंपू लिखे। भारतेन्दु ने 'देवी छद्मलीला', 'रानी छद्मलीला', 'तन्मय छद्मलीला' आदि छोटे-छोटे प्रबन्ध-काव्य लिखे, प्रसाद ने 'अयोध्या का उद्धार', 'वनमिलन', 'प्रेमराज्य' तथा 'प्रेमपथिक' प्रबन्ध-काव्य लिखे। भारतेन्दु ने 'प्रातः समीरन', 'बकरी विलाप', 'हिन्दी भाषा' आदि निबन्धात्मक कविताएँ लिखी, प्रसाद ने 'पराग' (चित्राधार) के अन्तर्गत संकलित कई पद्य-निबन्ध लिखे। दोनों ने कवित्त, सवैया एवं पदों के रूप में अनेक मुक्तक लिखे। भारतेन्दु ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में साहित्य-रचना की। प्रसाद की आरम्भिक कविताएँ अधिकतर ब्रजभाषा में और बाद का काव्य खड़ी बोली में लिखा गया। प्रत्येक ने लगभग एक दर्जन नाटक लिखे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु और प्रसाद सब से अधिक प्रसिद्ध नाटककार हैं। परवर्ती हिन्दी नाटकों पर भी इनका

प्रभाव लक्षित होता है। दोनों का इतिहास-प्रेम विविध कृतियों में प्रकट हुआ। गद्य के क्षेत्र में दोनों विशिष्ट शैलीकार थे। हिन्दी पत्रकारिता के विकास में भी दोनों का योग रहा है। भारतेन्दु के उद्योग से 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन,' 'बाला-बोधिनी' आदि पत्रिकाओं का जन्म हुआ और ये पत्रिकाएँ कई वर्ष हिन्दी-साहित्य के विविध अंगों की पुष्टि करने में योग देती रहीं। यही काम प्रसाद ने 'इन्दु' द्वारा किया। यह मासिक पत्रिका प्रसाद जी की प्रेरणा से उन्हीं के भांजे बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त द्वारा प्रकाशित हुई थी। 'इन्दु' प्रसाद-साहित्य के अध्ययन का एक आवश्यक साधन है, क्योंकि उनकी सभी प्रारम्भिक रचनाएँ—काव्य, निबन्ध, कहानी, चम्पू, लघुनाटक, नाट्यगीत आदि—इस पत्रिका में प्रकाशित होती रही हैं। 'इन्दु' कई वर्ष चल कर बन्द हो गई तो प्रसाद की कृतियाँ 'जागरण' और 'हंस' में प्रकाशित होती रहीं।

काशी के ये दोनों कवि-सम्राट् रसवादी कलाकार थे। उनके कवि-हृदय का सच्चा स्वरूप उनकी प्रेम-सम्बन्धी कविताओं में मिलता है। प्रेम में वेदना, आत्म-समर्पण, संयम और पवित्रता व्याप्त है। प्रसाद ने भारतेन्दु के बारे में लिखा था—"...जिन्होंने साहित्य की भावधारा को वेदना तथा आनन्द में नए ढंग से प्रयुक्त किया।" प्रसाद के साहित्य में वेदना और आनन्द ही तो है। 'कामायनी' का आरम्भ ही वेदना से होता है और अन्त आनन्द से। दोनों का हृदय पूर्णतया कवि का हृदय था जिसमें उदारता, भावुकता, करुणा और कोमलता भरी थी। उनका अधिकतर समय साहित्य-चर्चा में कटता था। कवि, कलाकार और रसिक उनको घेरे रहते थे और इन्हीं लोगों के सम्पर्क में उनको विशेष सुख मिलता था।

भारतेन्दु ने प्रिन्स एलबर्ट की मृत्यु पर और प्रसाद ने एडवर्ड सप्तम के निधन पर 'शोकोच्छ्वास' प्रकट करके राजभक्ति का प्रमाण

दिया। दोनों कट्टर देशभक्त भी थे। भारतीय संस्कृति और भारत की महत्ता पर उनका दृढ़ विश्वास था।

ऐसा होते हुए भी दोनों साहित्यकारों में कुछ अन्तर था। भारतेन्दु वैष्णव थे और प्रसाद शैव। प्रसाद के सारे साहित्य में 'विष्णु' नाम ही नहीं आता। वे राम और कृष्ण को महापुरुष ही मानते थे जैसा कि चित्रकूट, कुरुक्षेत्र, श्रीकृष्णजयन्ती आदि कविताओं से प्रकट होता है। भारतेन्दु पुष्टिमार्गीय कृष्णभक्त थे और उनके घर में ही कृष्ण-मन्दिर था। प्रसाद जी के मकान के सामने ही शिवालय है। उनकी ब्रजभाषा की कृतियों से लेकर, वल्कि उनकी प्रथम कविता से आरम्भ करके, उनकी अन्तिम काव्य कृति 'कामायनी' के अन्तिम सर्ग तक और अन्तिम अधूरी गद्य-कृति 'इरावती' तक में प्रसाद के शिवभक्त होने का प्रमाण मिलता है। वे शैवदर्शन से वहुत प्रभावित थे, और 'कामायनी' में उन्होंने इसकी अत्यन्त भावपूर्ण व्याख्या भी की है।

भारतेन्दु ने सारे उत्तरी भारत का भ्रमण किया था—जगन्नाथ पुरी, कलकत्ता, डुमरॉव, हरिहरक्षेत्र, वैद्यनाथ, पुष्कर, अजमेर, चित्तौड़, उदयपुर, मसूरी, अमृतसर और वर्तमान उत्तर प्रदेश के प्रायः सभी वड़े-वड़े नगर उन्होंने देखे थे। प्रसाद जी प्रायः काशी ही में रहे। उनका जीवन अधिकतर घर पर अथवा दुकान पर वीता। सैर को निकल पड़े तो सारनाथ चले गये अथवा गंगा जा कर वजरे पर घूम आये। भगवान् वुद्ध के जीवन से सम्वद्ध होने के कारण सारनाथ से उन्हें विशेष प्रेरणा मिलती थी। वौद्ध-संस्कृति, वौद्ध दर्शन और वौद्ध कालीन भारत के इतिहास का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया। अपनी मान्यताओं को उन्होंने दुःखवादी कविताओं में, नाटकों के अनेक करुणा-सम्वन्धी गीतों में, नाटकों के कथानकों में, और अन्य गद्य-पद्य-कृतियों में व्यक्त किया है। गंगा उनकी

२५-३० कृतियों में आई है और कुछ-एक में व्यक्तिगत अनुभवों का स्पष्ट वर्णन मिलता है। काशी से बाहर का जगत् उन्होंने बहुत कम देखा था। वे ६-१० वर्ष के थे तो अपनी माता के साथ चित्र-कूट, नैमिषारण्य, धाराक्षेत्र, ओंकारेश्वर, पुष्कर, उज्जैन, जयपुर, ब्रज, अयोध्या आदि की तीर्थयात्रा करने गये थे। बालक प्रसाद ने वहाँ से क्या-क्या प्रभाव ग्रहण किये और वे प्रभाव किस सीमा तक स्थायी रह पाये, इस बारे में कुछ कहना कठिन प्रतीत होता है। कुछ आलोचक इन प्रभावों की छाया विभिन्न कृतियों में देखने की चेष्टा करते हैं। प्रौढ़ अवस्था में प्रसाद जी सपरिवार जगन्नाथपुरी गये। 'हे सागर संगम अरुण नील' उनकी इस यात्रा के प्रभाव की कविता है। एक बार वे प्रदर्शनी देखने लखनऊ भी गये थे।

प्रसाद ने जिन दिनों काव्य-रचना आरम्भ की, उन दिनों महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में खड़ी बोली काव्य की परम्परा स्थापित हो रही थी। प्रसाद जी को द्विवेदी जी का प्रोत्साहन तो प्राप्त नहीं हो सका, लेकिन वे उस युग की इतिवृत्तात्मकता से बचे नहीं रह पाये। 'कानन-कुसुम' की अधिकतर कविताओं में वही छंद, वही स्वर मिलते हैं। यह अच्छा ही हुआ कि प्रसाद द्विवेदी जी के प्रभाव से अस्पृश्य रहे, नहीं तो उनकी मौलिकता, उनका कलात्मक सौष्ठव और भावात्मक विस्तार दब कर रह जाता।

यह ठीक है कि कालिदास प्रसाद से बहुत बड़े कवि थे। कालिदास की सब कृतियाँ प्रौढ़ हैं। प्रसाद में क्रमिक विकास है और उनकी कुछ कृतियों का ऐतिहासिक महत्त्व भले ही हो, उनका साहित्यिक महत्त्व कुछ भी नहीं है। प्रसाद का प्रकृति-वर्णन कालिदास की भाँति व्यापक नहीं है। वस्तु-वर्णन की विदग्धता भी कालिदास में अधिक है। तो भी प्रसाद पर कालिदास का गहरा

प्रभाव पड़ा है। प्रसाद जी के निजी पुस्तकालय का निरीक्षण करने से पता चला है कि उसमें की अधिकतर पुस्तकें संस्कृत की थीं और इनमें कालिदास की कृतियाँ विशेषतः उल्लेखनीय हैं। प्रसाद को 'अयोध्या का उद्धार' लिखने की प्रेरणा कालिदास के 'रघुवंश' से, एवं 'वनमिलन' और 'भरत' शीर्षक कविता की प्रेरणा 'शकुन्तला' नाटक से मिली। 'कुमारसंभव' की तरह 'कामायनी' भी हिमालय के उत्तुंग शृंग से प्रारम्भ होकर उसी की उच्च अधित्यका पर समाप्त होती है। कालिदास और प्रसाद दोनों शिवभक्त थे और शिव की समष्टि में विश्वास करते थे। कालिदास की समस्त कृतियों का अन्त आनन्द की प्राप्ति में होता है। प्रसाद की 'कामायनी' का उत्तरार्द्ध शैव-दर्शन से प्रेरित है और आनन्द की प्राप्ति उसका परम लक्ष्य है। इसीलिए अन्तिम सर्ग का शीर्षक ही आनन्द है। यही कामायनी की उपलब्धि है। संस्कृत साहित्य में कालिदास-कृत 'मेघदूत' और हिन्दी में 'आँसू' उत्कृष्ट विरह-काव्य हैं। कालिदास और प्रसाद दोनों प्रेम-सौन्दर्य और मानव-हृदय के व्याख्याता हैं।

रवीन्द्र बाबू और प्रसाद दोनों रसवादी, रहस्यवादी और मानवतावादी कवि थे। दोनों का कलात्मक सृजन में क्रमिक विकास हुआ। दोनों ने कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि साहित्य के सभी अंगों की पुष्टि में अपना-अपना योगदान दिया। पर रवीन्द्र सामाजिक और व्यावहारिक थे तो प्रसाद की दृष्टि अन्तर्मुखी थी। रवीन्द्र में पूर्व और पश्चिम का समन्वय हुआ है तो प्रसाद की कृतियों में प्राचीन और नवीन का। रवीन्द्र का क्षेत्र अधिक व्यापक है और साहित्य अधिक विशाल।

शेली 'प्रोमेथियस अन्बाउन्ड' महाकाव्य के रचयिता और अंग्रेजी के निराशावादी कवि थे। शेले की तरह प्रसाद ने भी अपनी

व्यक्तिगत निराशा और करुणा के माध्यम से विश्व की वेदना का साक्षात्कार किया। पर प्रसाद में विश्वास अधिक था। दोनों कवि सुख-शान्ति की कामना करते थे।

प्रसाद जी का एक निजी पुस्तकालय था। उसमें प्राप्त अंग्रेज़ी, संस्कृत, हिन्दी और उर्दू की ही पुस्तकें हैं। ज्ञात हुआ है कि प्रसाद बँगला नहीं जानते थे। उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जो प्रभाव ग्रहण किया है, वह 'गीतांजलि' आदि के हिन्दी अनुवाद द्वारा। सामान्यतः उनके प्रिय विषय थे साहित्य, काव्यशास्त्र, दर्शन, पुराण, पुरातत्त्व और इतिहास। हिन्दी में सन्त साहित्य और कृष्ण-काव्य के प्रति उनका विशेष मोह जान पड़ता है। बताया जाता है कि वे उर्दू-फारसी के पद्यों का रसास्वादन भी यथावसर कर लिया करते थे। वे अपने पड़ोसी मुंशी कालिन्दी प्रसाद से ज़ौक, सौदा, गालिब आदि उर्दू कवियों की और उमर खैयाम, रूमी, हाफिज़ आदि फारसी के प्रसिद्ध कवियों की कविताएँ सुना करते थे। इन सब का प्रभाव उनके काव्य पर पड़ा। इसका वर्णन हम अन्तिम दो अध्यायों में करेंगे। यह निश्चित है कि प्रसाद बड़े जिज्ञासु, अध्ययनशील और विचारवान् व्यक्ति थे।

जिन लोगों को उनके संपर्क का सौभाग्य प्राप्त हुआ वे सदा उनके समुपासक बने रहे हैं। जिन्हें उनके व्यक्तित्व का साक्षात्कार नहीं हुआ वे उनकी रचनाओं में ही उनके व्यक्तित्व की झलक देख सकते हैं। प्रसाद जी के मित्रों, बन्धुओं, भक्तों और मिलने वालों के साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। मझोला कद, गेहुँआ रंग, गोल मुँह, चौड़ा ललाट, बड़ी-बड़ी आँखें, होंठों में हँसी, दाँत सब एक पंक्ति में, रेशमी कुरता, रेशमी दुशाला—न जाने उनके व्यक्तित्व में क्या मोहिनी शक्ति थी!

उनकी वाणी में एक आकर्षण था और उनके रागद्वेषरहित हृदय में स्निग्धता भरी थी। उनके मित्र थोड़े थे, पर सब के सब गूढ़ और घनिष्ठ। वे संयत स्वभाव के व्यक्ति थे। किसी प्रकार की सभा-सोसाइटी में जाना उन्हें प्रिय नहीं था। कवि सम्मेलन आदि से दूर रहते थे। बुलाये जाने पर भी वे हँस कर टाल देते थे। यदि कोई उनसे जीवनी-संबंधी सामग्री माँगते तो वे मौन रह जाते। आत्मविज्ञापन से उनको चिढ़-सी थी। कभी-कभी नागरी प्रचारिणी सभा में अपने गिने-चुने मित्रों के साथ साहित्य-चर्चा करने चले जाते थे। प्रायः उनके मित्र घर पर या दुकान पर ही आ जाते थे। वे पत्र-व्यवहार में भी संकोची थे। व्यवसाय में थोड़ा-बहुत समय अवश्य लगाते थे। सुंघनी में सुगन्धित पदार्थ अपने हाथ से मिलाते और अपने माल की साख को बढ़ाने की चिन्ता में रहते थे। लेकिन इस दिशा में वे अधिक परिश्रम नहीं कर पाते थे। प्रातः गंगास्नान करके आते तो लिखने बैठ जाते, रात को फिर लिखा करते थे। चार-पाँच घंटे स्वाध्याय भी करते थे। मित्र-मंडली को भी समय देते थे। बाग-बगीचे का भी शौक था। घर में एक फुलवाड़ी लगा रखी थी जिसमें गुलाब, चमेली, बेला, जूही, रजनीगंधा आदि के पौधे थे। पारिजात के पेड़ के नीचे बैठकर अपनी रचनाएँ प्रेमी मित्रों को सुनाते थे। शतरंज को छोड़कर कोई और खेल नहीं खेलते थे। संगीत के प्रति विशेष अनुराग था। व्यायाम अवश्य करते थे। अहार-विहार के बारे में बड़े सावधान रहते थे। बादाम की ठंढाई उन्हें बहुत अच्छी लगती थी। वे तरह-तरह के भोजन बनाने में भी बड़े कुशल थे।

प्रसादजी का सांसारिक अनुभव अत्यन्त सीमित था। बाल्यकाल के इने-गिने प्रभाव, काशी का जीवन, व्यवसाय के लिए उनके पास आने वाले व्यापारियों का सम्पर्क, और अध्ययन—उनके बाहरी अनुभवों के बस यही स्रोत थे। वास्तव में बाहर के अनुभव को उन्होंने

भीतर कर लिया था। वे अन्तर्मुखी थे और उनके काव्य की प्रेरणा का सम्बन्ध, विशेषतया, उनके आन्तरिक जीवन से था। 'प्रेम पथिक', 'प्रथम प्रभात', 'करुणा-कुंज', 'हृदय-वेदना' 'आँसू' आदि बीसियों कवितायें उनकी आंतरिक स्थिति का परिचय देती हैं। उनके व्यक्तित्व की समस्त विभूतियाँ उनकी रचनाओं में देखी जा सकती हैं।

प्रसादजी के स्वार्जित पांडित्य में प्रौढ़ता और गम्भीरता थी, और उनके स्वभाव में स्वाभिमान, विनम्रता और सहिष्णुता। वे सच्चे साधक थे। उन्हें रूढ़िवादी आलोचकों की कटूक्तियों, व्यंग्यों और आक्षेपों की मार सहनी पड़ी। स्व० लाला भगवानदीन ने 'लक्ष्मी' में उनकी कृतियों की कटु आलोचना की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद का विरोध किया। महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनकी मित्र-मण्डली की कृपा उन पर कभी नहीं रही। पर प्रसाद ने अपने व्यक्तित्व को दबने नहीं दिया और वे निरन्तर लिखते रहे। उनकी साहित्य-साधना ईर्ष्या-द्वेष से कलुषित आलोचनाओं के बीच में शान्त और अबाध गति से चलती रही। उन्होंने किसी भी प्रतिपक्षी के आक्षेपों का उत्तर नहीं दिया। अपने सिद्धान्तों की पुष्टि में वे बराबर लिखते रहे। उन्होंने अपना संतुलन नहीं खोया।

तरुण तपस्वी सा वह बैठा, साधन करता सुर-श्मशान।
नीचे प्रलय-सिन्धु लहरों का, होता था सकरुण अवसान॥

उन्होंने जिस धैर्य और साहस से पारिवारिक विपत्तियों और व्यक्तिगत आघातों को सहन कर लिया, वही धैर्य और साहस उनका साहित्यिक बवंडर के बीच में भी बना रहा। वे तो शंकर थे जो समस्त पीड़ा के विप को चुपचाप पी गये।

सामाजिक जीवन में वे त्यागी, सदय और सरल थे। कट्टर सनातनधर्मी होते हुए भी वे रूढ़िवादी नहीं थे। वे अछूतोद्धार के पक्षपाती थे। विधवाओं के प्रति उनकी हार्दिक सहानुभूति थी।

नारी जाति के प्रति उनकी भावना श्रद्धा की थी। उनकी धारणा थी कि करुणा ही से मानव कल्याण होगा। शैव दर्शन के आनन्दवाद और गान्धी जी के कर्मवाद में वे दीन-दुःखियों का त्राण मानते थे। वे सांस्कृतिक उत्थान के हामी थे। आलोचकों ने उन्हें 'पलायनवादी' और प्रतिक्रियावादी कहा। पर वास्तव में वे प्राचीनता के पुजारी और नवीनता के प्रशंसक थे—देश और समाज की सामयिक समस्याओं के प्रति जागरूक थे। प्रेमचंद उनकी पुराण-इतिहास-प्रियता को पसंद नहीं करते थे, लेकिन 'मधुआ', 'वेड़ी', 'घीसू', आदि प्रगतिशील कहानियों और 'कंकाल' तथा 'तितली' उपन्यास को देखकर उन्हें वड़ा संतोप हुआ और वे प्रसादजी की मानवतावादी प्रवृत्ति के कायल हो गये। वास्तविकता यह है कि प्रसाद ने अपनी अनुभूतियों को अलग-अलग सीमाओं में रखकर अभिव्यक्त किया—इसमें उनकी कोई योजना-विशेष थी। नाटकों में उन्होंने अतीत का चित्रण किया, कहानियों और उपन्यासों में वर्तमान का, एवं काव्य में अन्तर्जगत् का। प्रसाद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझने के लिए उनके समूचे साहित्य को ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

कर्तृत्व

प्रसाद की प्रतिभा बहुमुखी थी। संस्कृत और हिन्दी की परम्परा ही नहीं, वेद, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण आदि का भरपूर ज्ञान लेकर वे साहित्य के सभी रूपों को समृद्ध करने में लगे रहे। हिन्दी के किसी रचनाकार ने विविध रूपों में इतनी मौलिक रचनाएँ नहीं दीं जितनी इस सरस्वती-पुत्र ने। वे साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी रहे हैं। हिन्दी को आधुनिक ढंग की सब से पहली मौलिक कहानी उन्होंने ही दी। 'ग्राम' हिन्दी की प्रथम कहानी मानी गई है। वे हिन्दी कविता की एक नई धारा के प्रवर्त्तक थे। उन्होंने महाकाव्य, खंडकाव्य, गीति

काव्य, काव्यकथा, काव्यनिबन्ध, चतुर्दशियाँ, तुकान्त, अतुकान्त, प्राचीन ढंग के मुक्तक, संस्कृत-उर्दू-ब्रजभाषा के छंदों में कविताएँ—सब तरह का काव्य लिखा। हिन्दी में सर्वप्रथम चतुर्दशियों का प्रचलन उन्होंने ही किया। साहित्यिक गीतों के वे जन्मदाता थे। हिन्दी की प्रथम अतुकान्त कविता 'प्रेम-पथिक' है। नाटककार और गद्यकार के रूप में भी प्रसाद को ऊँचा स्थान प्राप्त है। उनके नाटक हिन्दी नाट्य-साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। गद्य का इतना भावप्रधान और व्यापक प्रयोग बहुत कम ने किया है जितना प्रसाद ने। मूलतः वे कवि थे, अतः गद्य में भी वे कवि बने रहे हैं। उनका सारा साहित्य काव्यात्मक है।

प्रसादजी ने ७२ कहानियाँ लिखीं जिनमें प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, प्रेमप्रधान, समस्यामूलक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिक, प्रतीकात्मक, सामाजिक, यथार्थोन्मुख सब तरह की कहानियाँ सम्मिलित हैं। पहले-पहल उन्होंने 'ब्रह्मर्षि' और 'पंचायत' दो पौराणिक कथाएँ लिखी। शेष कहानियाँ पाँच संग्रहों में प्राप्त हैं। सर्वप्रथम उनकी पाँच कहानियों का संग्रह 'छाया' नाम से प्रकाशित हुआ। अगले संस्करण में छः कहानियाँ और जोड़ दी गईं। कथाशिल्प की दृष्टि से कहानियाँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इनमें 'ग्राम' सब से पुरानी कहानी है, लेकिन 'चन्दा' श्रेष्ठ है। 'प्रतिध्वनि' संग्रह में १५ कहानियाँ है। प्रायः कहानियाँ छोटी है जिनमें कथातत्त्व बहुत कम है। उन्हें कहानी न कहकर गद्यकाव्य कहना उचित होगा। तीसरा संग्रह 'आकाशदीप' है। इसमें १६ कहानियाँ हैं। संग्रह की सर्वोत्कृष्ट कहानी 'आकाशदीप' है। 'चूड़ी वाली' और 'बिसाती' भी सुंदर कहानियाँ हैं। प्रायः कहानियों में प्रसाद की कला का प्रौढ़ रूप दिखाई देता है। 'आँधी' नाम का दस कहानियों का संग्रह कहानी-कला और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें

प्रेम-कहानियाँ अधिक हैं। 'पुरस्कार' इस संग्रह की अंतिम और सर्वोत्तम कहानी है। प्रसाद जी का पाँचवाँ और अंतिम कहानी-संग्रह 'इन्द्रजाल' है जिसमें १४ कहानियाँ हैं। यदि प्रसाद की २० सर्वोत्तम कहानियों का चुनाव किया जाय तो आधी इस संग्रह से लेनी पड़ेंगी।

प्रायः कहानियों का विषय प्रेम और पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। कुछ सामाजिक कहानियाँ भी हैं। अधिकतर कहानियाँ प्रसादान्त हैं, पर जो कहानियाँ दुःखान्त हैं वे अधिक मार्मिक हैं। प्रायः कहानियों में प्रसाद का नाटककार और कवि भी रहता है। प्रसाद अपनी कहानियों में कवित्वपूर्ण भावना और प्रभावपूर्ण सौन्दर्य भरने में बहुत सफल रहे हैं। कथा-रस और काव्यरस को एक साथ मिलाने वाली प्रसाद की शैली अपूर्व है।

प्रसाद ने केवल तीन उपन्यास लिखे हैं—कंकाल, तितली और इरावती। अन्तिम उपन्यास अधूरा रह गया है। तीनों में विभिन्न कोटि की सामग्री है। 'कंकाल' में नागरिक सभ्यता की पोल खोली गई है और 'तितली' में ग्रामीण जीवन और तत्सम्बन्धी सुधारों पर प्रकाश डाला गया है। 'कंकाल' यथार्थवादी है तो 'तितली' आदर्श की ओर उन्मुख है। 'तितली' का कथा-विधान अधिक सुलझा हुआ है। दोनों उपन्यासों में नाटकीय तत्त्वों का समावेश हुआ है और रूप-वर्णन तथा भाव-चित्रण में कवित्व का। 'इरावती' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लिए हुए रोमांस है।

निबन्ध लिखने में भी प्रसाद को पर्याप्त सफलता मिली है। उनके १५-२० निबन्ध ज्ञात हैं। 'इन्दु' में प्रकाशित आरम्भिक काल के निबन्ध बहुत उच्चकोटि के नहीं कहे जा सकते। न तो इनकी शैली आकर्षक है, न भाव उज्ज्वल हैं, और न ही भाषा प्रभावपूर्ण अथवा स्वाभाविक है। 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में संगृहीत उनके ८ निबन्ध प्रौढ़ और महत्त्वपूर्ण हैं। नाटकों की

भूमिका के रूप में जो निबन्ध प्राप्त हैं, वे भी पांडित्यपूर्ण हैं। प्रसाद के साहित्य को समझने के लिए उनके निबन्धों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इनमें अनेक साहित्यिक समस्याओं का समाधान भी किया गया है। निबंधों में प्रसाद के आचार्यत्व के दर्शन होते हैं। इनकी शैली में विविधता, भाषा में प्रौढ़ता, विचारों में गम्भीरता और भावों में सहृदयता है। इनसे प्रसाद के अध्यवसाय, मन्थन, मनन और विवेचन का पता चलता है।

प्रसाद एक गम्भीर अन्वेषक भी थे। 'चंद्रगुप्त मौर्य' की भूमिका, और 'प्राचीन आर्यावर्त का प्रथम सम्राट्' शीर्षक शोध-निबन्ध में उन्होंने अपनी गवेषणा के बल पर नई मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं। अनेक नाटकों के कथानकों में भी उन्होंने सप्रमाण खोज के भरोसे नये ऐतिहासिक सत्य स्थापित किये हैं। 'इरावती' उपन्यास के माध्यम से वे पुष्यमित्र के बारे में कुछ नई धारणायें रखना चाहते थे, पर वह अधूरा ही रह गया।

हिन्दी के नाटक-साहित्य की समृद्धि में प्रसाद ने विशेष योगदान दिया। उनके १३ नाटक उपलब्ध हैं। एक नाटक 'यशोधर्मदेव' नाम से उन्होंने लिखा था, लेकिन इसे प्रकाशित नहीं किया। इसका कारण यह बताया जाता है कि प्रसाद जी ने जिन विद्वानों से परामर्श किया, उन्होंने अनेक प्रमाणों के आधार पर इसकी ऐतिहासिक सामग्री को अमान्य ठहराया। अतः प्रसाद ने इस नाटक का प्रकाशन अवांछनीय माना और उसे नष्ट कर दिया। नाटकों में एक और नाटक 'अग्निमित्र' नाम से अपूर्ण रूप मे मिला है। प्रसाद जी ने केवल दो-तीन दृश्य ही लिखे थे कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें यह परामर्श दिया कि इस कथानक पर नाटक नहीं, उपन्यास लिखा जाय। उनसे सहमत होते हुए प्रसाद जी ने इसे छोड़ दिया और उसी पृष्ठभूमि पर 'इरावती' उपन्यास लिखना आरम्भ किया। तेरह

प्रकाशित नाटकों का विवरण इस प्रकार है—

प्रयोगकाल के पाँच नाटक :

सज्जन—पौराणिक—दुर्योधन की कुटिलता और युधिष्ठिर की सज्जनता और उदारता को दिखाने के लिए घटनाप्रधान कथानक लिया गया है—१६१०-११ ई० ।

प्रायश्चित्त—ऐतिहासिक—जयचंद्र की आत्महत्या के कारणों की व्याख्या करता है—१६१२ ई० ।

कल्याणी-परिणय—ऐतिहासिक—चन्द्रगुप्त मौर्य और यवन-कुमारी कार्नेलिया (कल्याणी) के विवाह की कथा वर्णित है—बाद में इसे 'चंद्रगुप्त मौर्य' के चौथे अंक में सम्मिलित कर लिया गया—१६१२ ई० ।

करुणालय—पौराणिक गीति-नाट्य—राजा हरिश्चंद्र के पुत्र रोहिताश्व और विश्वामित्र के पुत्र शुनःशेफ की कहानी है—१६१३ ई० ।

राज्यश्री—ऐतिहासिक— सम्राट् हर्ष और उनकी बहिन राज्यश्री के जीवन से सम्बद्ध इतिहास-प्रसिद्ध कथा—१६१५ ई० । बाद में प्रसाद जी ने इसका संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण तैयार किया ।

उत्तरकालीन नाटक :

विशाख—ऐतिहासिक तत्त्व कम, प्रेमकथा प्रधान है । इसकी पृष्ठभूमि कश्मीर के राजा नरदेव के राज्यकाल की एक घटना है—१६२१ ई० ।

अजातशत्रु—ऐतिहासिक—इसमें महात्मा बुद्ध के जीवन-काल में मगध, अयोध्या और कौशाम्बी के बीच में हुए युद्धों और बुद्ध के माहात्म्यपूर्ण प्रभावों की कथा है—१६२२ ई० ।

जनमेजय का नागयज्ञ—पौराणिक—इसमें इन्द्रप्रस्थ के राजा जनमेजय के राज्यकाल में हुए नाग जाति के विद्रोह और दमन का वृत्तान्त है—१६२३ ई० ।

कामना—भावनाटक—इसमें विलास, स्वार्थ, संघर्ष आदि का दुष्परिणाम और विवेक तथा सन्तोष द्वारा मंगलविधान दिखाया गया है—१९२३-२४ ई० ।

चन्द्रगुप्त मौर्य – ऐतिहासिक—इसमें यूनानियों के भारत पर आक्रमणों, और नंदवंश का नाश करने वाले चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त की विजयों का वर्णन है—१९२८ ई० ।

स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य—ऐतिहासिक—गुप्तवंशीय सम्राट् स्कन्द-गुप्त से सम्बन्धित राजनीतिक और शृंगारिक कथा—१९२८ ई० ।

एक घूँट – प्रतीकात्मक एकांकी—इसका विषय है : आनन्द विश्व की कामना का मूल रहस्य है—१९२९ ई० ।

ध्रुवस्वामिनी—ऐतिहासिक—इसकी समस्या है नारी का शोषण, जिसका समाधान भी किया गया है गुप्त सम्राट् रामगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी के पुनर्विवाह में—१९३३ ई० ।

'प्रायश्चित्त' हिन्दी का प्रथम मौलिक दुःखान्त नाटक है। 'एक घूँट' हिन्दी का प्रथम एकांकी है। और 'कामना' हिन्दी का प्रथम रूपक है। ऐतिहासिक नाटकों की सब से बड़ी विशेषता यह है कि प्रसाद ने ऐतिहासिक तथ्यों को यथाशक्ति अक्षुण्ण रखा है। बहुत कम नाटककार हैं जो इतिहास की रक्षा करते हुए साहित्यिक सौन्दर्य की सृष्टि करने में सफल हो पाये हैं। इनमें प्रसाद ने वैदिक काल, बौद्ध काल, मौर्यकाल, गुप्तकाल, पुराणकाल, राजपूत-काल का चित्रण करते हुए देश-काल की स्थिति को विशद रूप में रखा है; और तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्थाओं की यथातथ्य भूमिकाएँ प्रस्तुत की हैं। आरंभिक नाटकों में इतिहास अधिक और कल्पना कम है जिससे नाटकीय कला की क्षति हुई है। 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' में इतिहास के सूत्र अधिक नहीं हैं, इसी से ये कदाचित् प्रसाद जी के सर्वोत्कृष्ट नाटक हैं। प्रसाद के

सभी नाटकों का आधार भारत की संस्कृति है। प्राचीनता के आलोक में वे वर्तमान की समस्याओं का समाधान पाने की चेष्टा करते रहे हैं। उन्होंने इतिहास के उन-उन युगों को लिया जिनमें धार्मिक, राजनीतिक अथवा सामाजिक उथल-पुथल मची रही ताकि अपने समय की उथल-पुथल को भी प्रतिबिम्बित कर सकें। चरित्र-चित्रण-सम्बन्धी एक सामान्य विशेषता यह पाई जाती है कि प्रसाद के नारी-पात्र प्रायः अधिक प्रभावशील, उदार, बलशाली और प्रतिष्ठावान् हैं। भावप्रवणता, त्याग, सेवा, अनुकम्पा, आत्मसम्मान आदि नारी के सहज गुण हैं। प्रेमिकाओं का चरित्र विशेषतः आकर्षक बन पाया है। नाट्य-शिल्प-सम्बन्धी अनेक प्रयोग इन नाटकों में प्राप्त होते हैं—किसी में संस्कृत शिल्प-विधि, किसी में पारसी थियेटरों का सा पद्यमय संवाद, किसी में बँगला नाटकों के-से लम्बे-लम्बे कथोपकथन, किसी में भारतेन्दु-परम्परा की दृश्य-विभाजन-पद्धति तथा उपदेशात्मक वृत्ति, किसी मे अंग्रेज़ी नाटकों का-सा सङ्घर्ष, और प्रायः सब मे प्रसाद के नये-नये कलात्मक प्रयोग। प्रसाद का कवि उनके कथाकार, नाटककार अथवा शिल्पी पर सदा हावी रहा है। कथानक, विषयवस्तु, चरित्र-चित्रण, रस आदि अनेक नाटकीय तत्त्वों में कवि सामने रहता है। नाटकों में अत्यन्त सुंदर गीत भरे हैं। 'स्कन्दगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' के प्रेमगीत तथा राष्ट्रीय गीत विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

प्रसाद ने दो चम्पू भी लिखे—उर्वशी और बभ्रुवाहन। दोनो साधारण कोटि के हैं। कथाएँ पौराणिक हैं।

प्रसाद मुख्यतः कवि थे—नाटक, कहानी, उपन्यास, सब में उनका कवित्व झलकता है। वे ९-१० वर्ष के थे कि उन्होंने एक सवैया बनाकर अपने गुरु रसमयसिद्ध को दिखाया था। आरम्भ में वे व्रजभाषा में कविता करते थे। बाद को खड़ी बोली की ओर प्रवृत्त

हुए। उनकी आरम्भिक कविताएँ 'इन्दु' मे प्रकाशित हुआ करती थीं। 'चित्राधार' उनकी फुटकर रचनाओं का प्रथम संग्रह है। इसमें 'पराग' और 'मकरन्द-विन्दु' शीर्षक के अन्तर्गत १०० से ऊपर छोटे-छोटे पद्य संगृहीत हैं। 'प्रेम-पथिक' (व्रजभाषा) भी इसी काल की कृति है। लेकिन 'चित्राधार' में प्रसाद की सब की सब व्रजभाषा की कविताएँ सम्मिलित नही हैं। कुछ छंद पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्त होते हैं। 'कानन-कुसुम' उनकी खड़ी बोली की कविताओं का प्रथम संग्रह है। प्रायः कविताएँ इतिवृत्तात्मक हैं। इनमे उस युग की शैली और भावना विद्यमान है। कुछ कविताओं मे विकास के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें कवि के नवीन प्रयोग भी दिखाई देते है। करुणालय, महाराणा का महत्त्व और प्रेम-पथिक (खड़ी बोली) भी इसी काल की रचनाएँ हैं।

'झरना' की कविताओं से प्रसाद के प्रौढ काव्य का विकास होता है। इसमें सन् १९१५ से १९२२ तक की कविताएँ संकलित हैं। इस की कुछ कविताओं में रहस्यवादी संकेत मिलते है, पर वस्तुतः प्रसाद मानव हृदय के कवि हैं। 'अव्यवस्थित' उनकी प्रथम हृदयवादी कविता है। 'चित्राधार' और 'कानन-कुसुम' की कविताओं में जो जिज्ञासा और कुतूहल है, उसके स्थान पर युवा प्रसाद में दृढ़ता और आस्था भर रही है। उनमें उल्लास भी है और यौवन का उन्माद भी। लेकिन लगता है कि उनके हृदय में कहीं गाँठ पड़ रही है। जीवन का कटु सत्य, परिस्थितियों का निर्मम रूप, घिर रहा है। कुछ कविताओं में आशा के साथ निराशा और उल्लास के साथ विषाद की झलक स्पष्ट दिखाई देती है और कुछ-एक में निराशा और तज्जन्य वेदना तीव्र हो चली है। अतीत की सुख-स्मृतियाँ उन्हें और भी अधिक तड़पा देती हैं। स्मृति, निराशा, प्रेम-व्यथा और तड़प पुंजीभूत होकर 'आँसू' के रूप में प्रकट हुई है।

'आँसू' में लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम के संकेत मिलते हैं। 'आँसू' के छंदों की गठन इस प्रकार की है कि प्रत्येक छंद अपने में पूर्ण भी है और आगे-पीछे के छंदों से सम्बद्ध भी है। अर्थात्, उसका रूप मुक्तक का भी है, प्रबन्ध का भी। भाव, भाषा, कला और शैली की दृष्टि से इस कृति में प्रसाद के काव्यकौशल का परिचय मिलता है। 'आँसू' काव्य के भाष्यकार डा० विनयमोहन शर्मा ने ठीक ही कहा है कि प्रसाद हिन्दी के भावुक कवि और कुशल कलाकार हैं, इसे यदि कोई उनकी एक ही रचना में देखना चाहे तो उसे 'आँसू' की ओर इंगित किया जा सकता है।

'आँसू' के पश्चात् प्रसाद की ३३ स्फुट कविताओं का संग्रह 'लहर' नाम से प्रकाशित हुआ। इन कविताओं में कवि की विभिन्न मनः-स्थितियाँ हैं, लेकिन लगता है कि कवि का विषाद उल्लास और आनन्द में लीन हो रहा है, निराशा आशा में बदल रही है। कवि की भावभूमि अधिक विस्तृत हो गई है। 'लहर' गीतात्मक रचनाओं का संग्रह है। 'अरी वरुणा की शान्त कछार', 'जगती की मंगलमयी उषा बन', 'अशोक की चिन्ता', 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'प्रलय की छाया' वर्णनात्मक और बहिर्मुखी रचनाएँ हैं। शेष सब के सब गीत अन्तर्मुखी हैं। अनेक गीतों में कवि की सौन्दर्य-प्रियता, चिन्तना और प्रौढ़ कल्पना के दर्शन होते हैं। प्रायः कविताएँ रहस्यवादी-छायावादी हैं, कुछ एक में प्रगतिवादी स्वर भी स्पष्ट है।

'कामायनी' प्रसाद जी की अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति है। इसमें प्रसाद जी का चिन्तन, उनकी सांस्कृतिक विचार-धारा, उनका काव्यगुण, उनका छायावाद-रहस्यवाद-समन्वयवाद-मानवतावाद, सब कुछ आ गया है। यह प्रसाद के काव्य का ही सार-संकलन नहीं है, उनके जीवन का भी समाहार है। कामायनी आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ

महाकाव्य है। भाव और कला दोनों की दृष्टि से यह कृति हिन्दी की अपूर्व और अमूल्य निधि है। कथा बड़ी सरल और सूक्ष्म है—प्रलय के बाद मनु का विक्षोभ, श्रद्धा से उसकी भेंट, दोनों का प्रणय, मनुजकुमार का जन्म और मनु का घर से पलायन, मनु और इड़ा की भेंट और मनु की महत्त्वाकांक्षाओं का दुष्परिणाम, श्रद्धा द्वारा मनु की खोज और प्राप्ति, मनु का पुनःपलायन और वन-पर्वतों में शान्ति की खोज में भटकाव, श्रद्धा द्वारा इच्छा, ज्ञान और कर्म की व्याख्या और मनु को सत्य एवं आनन्द की उपलब्धि। इस कथा को रूपक मानकर मनु का अर्थ मन, श्रद्धा का अर्थ चेतन शक्ति (अथवा हृदय) और इड़ा का अर्थ जड़शक्ति (अथवा बुद्धि) भी लिया जाता है। मनु आदि मानव हैं, अतः मनु की कहानी में मानवता के विकास की कहानी है। आधुनिक युग के लिए भी कामायनी का एक संदेश है, और वह यह है कि मानवता का पूर्ण विकास हृदय और बुद्धि के संतुलन से ही संभव है। जहाँ एक पक्ष की अति होगी, वहाँ सर्वनाश हो जायगा। भारत के अध्यात्मवादियों को कुछ भौतिकवादी बनने की और पश्चिम के भौतिकवादियों को कुछ अध्यात्म की ओर झुकने की आवश्यकता है। जब तक विश्व में इन दोनों का संतुलन नहीं होगा, तब तक अशान्ति, संघर्ष और युद्ध होते ही रहेंगे।

यह कह देना बहुत आवश्यक है कि प्रसाद के काव्य का अध्ययन उनके नाटकों में आये हुए गीतों के अध्ययन के बिना अधूरा होगा। ये गीत प्रायः 'झरना' के बाद और 'कामायनी' से पहले लिखे गये हैं। ये प्रसाद की प्रौढ़ अवस्था के गीत हैं। ये गीत बड़े सरस, भावपूर्ण, संगीतात्मक और प्रसादगुण-सम्पन्न हैं और प्रसाद की काव्यधारा का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करते हैं। अधिकतर गीतों का विषय प्रेम है। जीवन-दर्शन, राष्ट्रप्रेम और प्रकृति-संबंधी गीत भी

हैं, पर इनकी संख्या बहुत कम है।

'स्कंदगुप्त' और 'चंद्रगुप्त' के गीत सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। 'कामना' के गीत उतने कलात्मक तो नहीं, कोमल और भावपूर्ण अवश्य हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ' के गीतों में सरसता कम है। 'राज्यश्री' के जो गीत इस काल में लिखे गये, वे सफल हैं।

कालक्रम से प्रसाद की काव्य-रचनाओं के प्रकाशन की सूची नीचे दी जा रही है जिससे उनके विकास की विभिन्न अवस्थाओं का परिचय एक दृष्टि में प्राप्त किया जा सके।

सन्

[१८८६—प्रसाद का जन्म।]

१८९८—प्रथम कविता—शिवस्तुति।

१९०६—'भारतेन्दु' में प्रकाशित एक छंद।

१९०६—प्रेम-पथिक (व्रजभाषा में प्रेमकथा)।

१९०९—'इन्दु' के प्रकाशन के साथ काव्य-जीवन का प्रारम्भ।

१९०९—प्रेमराज्य (प्रबन्ध-काव्य)।

१९१०—वन मिलन (प्रवन्ध-काव्य, व्रजभाषा में)।

१९१०—अयोध्या का उद्धार (प्रबन्ध-काव्य, व्रजभाषा में)।

१९१०—शोकोच्छ्वास (एडवर्ड सप्तम के निधन पर शोक-काव्य)।

१९१२—करुणालय (अतुकांत गीति-रूपक)।

१९१३—कानन-कुसुम (प्रथम संस्करण में ४१ कविताएँ, बाद में ८ कविताएँ और जोड़ी गईं)।

१९१४—प्रेम-पथिक (प्रेम गाथा, अतुकांत)।

१९१४—महाराणा का महत्त्व (भिन्नतुकान्त खण्डकाव्य)।

१९१८—चित्राधार (विविध गद्य-पद्य-मय रचनाओं का संग्रह)।

१९१८—झरना (प्रथम संस्करण में २५ कविताएँ, बाद में २३ और जोड़ी गईं)।

१६२१-२३—नाटकों के अधिकतर गीत।
१६२५—आँसू (विरह-काव्य)।
१६२८—चित्राधार (सन् १६१२ तक की ब्रजभाषा की कृतियाँ)।
१६३३—लहर (३३ कविताओं का संग्रह)।
१६३५-३६—कामायनी (महाकाव्य)।
[१६३७—प्रसाद का देहावसान]।

प्रसाद का काव्य बहुत अधिक नहीं है, और उत्कृष्ट काव्य तो उससे भी कम है। परन्तु प्रसाद का महत्त्व तो इसमें है कि उनका उत्कृष्ट आधुनिक हिन्दी का सर्वोत्कृष्ट है। उनके साहित्य में विकास की अनेक अवस्थाएँ है।

अनादि तेरी अनन्त माया जगत् की लीला दिखा रही है।
असीम उपवन के तुम हो माली धरा बराबर जता रही है।
(कानन कुसुम)

और

आओ हिये मे मेरे प्राणप्यारे। (अजातशत्रु)

जैसी पंक्तियाँ लिखने वाला कवि 'कामायनी' लिख सका, यह सोच कर ही विस्मय होता है। जो कवि लौकिक वासनामय प्रेम से उठ कर रहस्यात्मक शुद्ध प्रेम की खोज कर सका, वह कितना महान् ऋषि है, यह प्रसाद के कर्तृत्व से जाना जा सकता है। प्रसाद के काव्य में बुद्ध का दुःखवाद, शैवों का आनन्दवाद, कालिदास का सौन्दर्यवाद, तुलसी का समन्वयवाद, रवि बाबू का भाववाद और गांधी का कर्मवाद एकत्र हो गया है। सामान्यतः प्रसाद-काव्य की विशेषताएँ ये हैं—

प्रेम के सभी अंगों, क्षेत्रों और अवस्थाओं का वर्णन तथा वासनामूलक प्रेम का विस्तार करते-करते उसमें आध्यात्मिक और रहस्यात्मक भावना का समावेश, व्यक्तिगत प्रेम की गति विश्वप्रेम-

की ओर, सान्त लौकिक प्रेम का विकास अनन्त की ओर;

आन्तरिक भावों का मर्मस्पर्शी और मनोवैज्ञानिक चित्रण और जीवन का आदर्शयुक्त यथार्थ चित्रण ;

व्यक्तिगत दुःख का वर्णन करते-करते सम्पूर्ण लोक की पीड़ा, करुणा के राज्य की स्थापना और उसकी व्याख्या, व्यक्ति से ऊपर उठ कर समष्टि की चिन्ता और लोक-कल्याण की भावना ;

मानवता के प्रति आस्था ;

भारत, भारतीय इतिहास, भारतीय संस्कृति और भारतीय जीवन-दर्शन के प्रति मोह और नई चेतना ;

सौंदर्य की शाश्वत एवं सात्विक व्याख्या ;

प्रकृति का वर्णनात्मक, भावात्मक तथा रहस्यात्मक चित्रण ;

कल्पना और अनुभूति का सन्तुलन;

भाषा, शैली, छन्द, अभिव्यंजना और काव्य-रूपों की नवीनता, विविधता और प्रयोगशीलता ;

व्यक्तित्व और कर्तृत्व का सामञ्जस्य एवं निरन्तर विस्तार ।

प्रसाद की सर्वतोमुखी प्रतिभा की विशेषताएँ हैं सौन्दर्य, माधुर्य, गाम्भीर्य, विलक्षणता और प्रौढता; एवं अभिव्यक्ति में नवीनता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। उनके साहित्य में अतीत का मोह, वर्तमान की चिन्ता और भविष्य की आशा ओतप्रोत है। हिन्दी के किसी रचनाकार ने विविध रूपों में इतनी अधिक मौलिक रचनाएँ नहीं दीं जितनी इस सरस्वतीपुत्र ने। निस्सन्देह प्रसाद अपने युग के महान् चिंतक, प्रयोक्ता और स्रष्टा थे। साहित्य-स्रष्टा के रूप में वे उदार और जागरूक रहे हैं। भारतेन्दु-युग के संस्कार लेकर वे द्विवेदी युग के आरम्भ में ही लिखने लग गये, लेकिन उस युग की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया में उन्होंने छायावादी कविता का सूक्ष्म

और व्यञ्जनापूर्ण विधान प्रस्तुत किया और बाद में प्रगतिवाद का प्रभाव भी सहर्ष स्वीकार किया। इस प्रकार वे हिन्दी के चार साहित्यिक युगों में अपने व्यक्तित्व की विशिष्टताओं का परिचय दे सके। उनकी देन परिमाण में बहुत अधिक न हो, पर वह इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उनके नाम को युग-युग तक अमर रखेगी। निराला के शब्दों में—

किया मूक को मुखर, लिया कुछ, दिया अधिकतर
पिया गरल पर किया जाति साहित्य को अमर।

प्रसाद उन युग-प्रवर्त्तकों में हैं जिनके कर्तृत्व में युग-युग की बिखरी हुई सांस्कृतिक उपलब्धियाँ एक जगह सिमट कर आ गई हैं।

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।

यह था महान् उद्देश्य प्रसाद के जीवन का और यह है उपलब्धि उनके साहित्य की।

२. प्रारंभिक कविताएँ

व्रजभाषा

प्रसाद का कवि-जीवन व्रजभाषा की कविताओं से आरम्भ होता है। वे अभी ९ वर्ष ही के थे कि उन्होंने निम्नलिखित सवैया लिखा था—

हारे सुरेस रमेस धनेस गनेसहु सेस न पावत पारे।
पारे हैं कोटिक पातकी पुञ्ज 'कलाधर' ताहि छिनों विच तारे।
तारेन की गिनती सम नाहिं सुवेते तरे प्रभु पापी विचारे।
चारे चले न विरंचहि के जो दयालु ह्वै संकर नेक निहारे।
(१८९८ ई०)

यह शिव-स्तुति अप्रकाशित रही है। प्रकाशित कविताओं में निम्नलिखित छन्द को प्रसाद की कवि-लेखनी का प्रथम प्रसाद माना जाता है। यह सवैया 'भारतेन्दु' (१९०६ ई०) में छपा था—

सावन आए वियोगिन को तन आली अनग लगे अति लावन।
लावन हीय लगी अबला तड़पै जब बिज्जु छटा छवि छावन।
छावन कैसे कहूँ मै विदेश लगे जुगनू हिम आग लगावन।
गावन लागे मयूर 'कलाधर' झाँपि कै मेघ लगे बरसावन ॥

कलाधर भी शंकर का नाम है। रीतिकाल की परंपरा में जयशंकर प्रसाद ने ब्रजभाषा की अनेक कविताएँ इस नाम से लिखीं जो सन् १९०९ से 'इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित होती रहीं। उसके मुखपृष्ठ पर प्रसाद का एक पद्य छपता था जिसकी निम्नलिखित पंक्ति बड़ी व्यंजनापूर्ण है—

काव्य महोदधि ते प्रकट्यो रस रीति कला जुत पूरण इन्दु है।

प्रसाद अपनी कविताओं में 'रस रीति कला' का ध्यान रखते थे, यह तो प्रगट ही है। 'इन्दु' की प्रथम कला की प्रथम किरण में उनकी एक कविता 'शारदाष्टक' शीर्षक से और एक निबन्ध 'प्रकृति-सौन्दर्य' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। 'शारदाष्टक' मे सरस्वती-वंदना है जो भक्तिभावपूर्ण है। ईश-स्तुति और भक्ति प्रसाद की अनेक आरम्भिक कविताओं का प्रिय विषय है। प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण भी बहुधा कविताओं में हुआ है।

'चित्राधार' (द्वितीय संस्करण) में प्रसाद की अधिकतर ब्रज-भाषा की कविताएँ संकलित हैं। कुछ फुटकर छंद पत्र-पत्रिकाओ में शेष हैं। खड़ी बोली की रचनाएँ 'कानन-कुसुम' में संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त 'प्रेम पथिक', 'करुणालय' और 'महाराणा का महत्त्व' भी इसी काल की रचनाएँ हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि खड़ी बोली और ब्रजभाषा की इन रचनाओं की भावधारा एक-सी है।

'चित्राधार' में दो पौराणिक कथाओं, दो पौराणिक चम्पुओं, दो नाट्यरूपकों (एक पौराणिक, एक ऐतिहासिक) के अतिरिक्त तीन प्रबन्ध-काव्य (अयोध्या का उद्धार, वनमिलन तथा प्रेमराज्य) और पराग तथा मकरन्द-बिन्दु नाम से फुटकर छंदों के संग्रह संकलित हैं।

प्रबन्ध-काव्यों में 'अयोध्या का उद्धार' प्राथमिक रचना है। इस कथा में कोई मौलिकता नहीं, लेकिन अभिव्यंजना-शैली सुन्दर है

जिससे सरसता आ गई है। कथा का आधार कालिदास-कृत 'रघुवंश' का १६वाँ सर्ग है। १० पृष्ठों की कृति में छन्द-परिवर्तन बार-बार हुआ है।

महाराज रामचन्द्र के पश्चात् कुश को कुशावती और लव को श्रावस्ती के प्रदेश मिले और अयोध्या उजड़ गई। एक दिन जब 'कुश राजकुमार नींद में सुख सोए शुचि सेज पै तहाँ', उन्हें ऐसा लगा कि कोई कलकंठी गाती हुई वीणा बजा रही है। उस रमणी ने रघुवंश की अनेक प्रशस्तियाँ गाने के पश्चात् कहा—"उठो, जागो, सुप्रभात हो, प्रजा सुखनिद्रा ले।" कुश ने पूछा—"कहो तुम कौन हो और तुम्हें क्या दुःख है।" सुन्दरी ने उत्तर दिया, "मैं अयोध्या की राज्यश्री हूँ। अयोध्या को शासनहीन पाकर नागवंशीय कुमुद ने हस्तगत कर लिया है।

रघु, दिलीप, अज आदि नृप दशरथ राम उदार।
पाल्यो जाको सदय ह्वै तासों करो उद्धार॥"

स्वर्ण-विहान होते ही कुश ने अयोध्या का उद्धार किया। नागराज ने अपनी पुत्री का विवाह कुश से कर दिया।

कविता साधारण है, पर इसमें प्रसाद की प्रबन्ध-योजना, पुराण-प्रियता, नाटकीयता और कल्पना के दर्शन अवश्य हो जाते हैं, जिससे उदीयमान कवि के भविष्य की सूचना मिलती है।

'वनमिलन' कालिदास के 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' से प्रेरित २१ पृष्ठों की एक लम्बी कविता है। इसका रूप तो पुराना है, पर भाव आधुनिक भरे हैं। भूधर-नृपति हिमालय पर्वत विलसित हो रहा है। 'तेहि कटि तट महँ कण्व महर्षि सो है।' उन्हीं के आश्रम में प्रियंवदा और अनुसूया अपनी सखी शकुन्तला के लिए व्यग्र हैं। वे समझती हैं कि शकुन्तला ने

'पाइ राजसुख सखियन को निज हाय बिसारी ;
बहुत दिवस बीते निज खबर न दीन्हीं प्यारी।'

गौतमी दुष्यन्त की राजधानी में गई थी; पर वह भी कुछ और बताती नहीं है। कुछ दिनों बाद कश्यप ऋषि का शिष्य गालव आ गया। उसने समाचार दिया कि शकुन्तला एवं भरत के साथ महाराज दुष्यन्त मरीचि के आश्रम से चल कर यहाँ आ रहे हैं। वनवासियों के बीच जब यह राजपरिवार आया, तब उस करुण स्रोतस्विनी से आनन्द का एक उत्स फूट निकला। इसी बीच शकुन्तला की माता मेनका चीनांशुक उड़ाती उतर पड़ीं और इस शुभ अवसर पर सम्मिलित हो गईं। कण्व ने आशीर्वाद दिया और सब चल दिए।

इस कविता में प्रसाद की मौलिकता की झलक मिलती है। हिमालय, वन और वनबालाओं के सौन्दर्य का वर्णन बड़े मौलिक ढंग से हुआ है। कथानक अन्त में कुछ शिथिल और प्रभावहीन अवश्य हो गया है। भाषा परिमार्जित है। छंद संस्कृत के प्रयुक्त हुए हैं।

'प्रेमराज्य' रोला और छप्पय छंदों में १२ पृष्ठों की एक सरल प्रणयकथा है जो दो परिच्छेदों में विभाजित है। पूर्वार्द्ध में विजयनगर के राजा सूर्यकेतु और अहमदनगर के बहमनी वंश के मुसलमान सुलतान के बीच हुए सुप्रसिद्ध तालीकोट के युद्ध (सन् १५६५ ई०) का वर्णन है। राजा युद्ध में जाने से पहले अपनी एकमात्र सन्तान, ५ वर्ष के कुमार चन्द्रकेतु, को एक भील सरदार को सौंप गए थे। सूर्यकेतु के लोभी मंत्री ने विश्वासघात किया और वह शत्रु से जा मिला। सूर्यकेतु मारा गया। मन्त्री को भी कुछ लाभ नहीं हुआ और वह भी घर आया तो पत्नी ने बड़ी डाँट दी और वह उत्तराखंड को चल दिया। उत्तरार्द्ध में कुमार चन्द्रकेतु एवं मंत्री की पुत्री ललिता के प्रेम और परिणय रूपी प्रेमराज्य की कहानी है। अन्त में चन्द्रकेतु

राजा वनते हैं और ललिता रानी। तपस्वी वेश में मन्त्री भी वही आ जाते है और दोनों को आशीर्वाद देते हैं। उत्तरार्द्ध में प्रायः १६ पक्तियों मे शिव के विश्वम्भर रूप का भी वर्णन है। भारत-गौरव सम्बन्धी एक लम्बा गीत भी इस सम्बन्ध में है जिससे प्रसाद की देशभक्ति का परिचय मिलता है।

'प्रेमराज्य' की केवल आधार-शिला ऐतिहासिक है—उत्तरार्द्ध में रोमांस का पुट दे दिया गया है। वीरता और प्रेम की यह कहानी भावसृष्टि में तो सफल है पर इसकी कला का स्तर वहुत ऊँचा नहीं है। कथा-निर्वाह में कल्पना और मौलिकता दिखाई देती है। प्रकृति-चित्रण सुन्दर है। शव्दो में माधुर्य तो है पर उनका प्रयोग यत्र-तत्र शिथिल और प्रयासपूर्ण हो गया है।

चित्राधार के 'पराग' खंड में २२ निबन्धात्मक कविताएँ है। सामान्य विपयों को लेकर विचारों और भावों का तारतम्य कुछ दूर तक चला चलता है। यह धारा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की चलाई हुई जान पड़ती है। प्रसाद जी की ये कविताएँ पहले 'इन्दु' में प्रकाशित हुई थी। शारदीय शोभा, रसाल-मंजरी, रसाल, वर्षा में नदी-कूल, उद्यानलता, प्रभात-कुसुम, नीरद, शरद-पूर्णिमा, संध्या तारा, चन्द्रोदय और इन्द्रधनुष प्रकृति-संवंधी ११ कविताएँ है। अष्टमूर्ति, विनय और विभो प्रार्थनाएँ हैं। 'शारदीय महापूजन' एक स्तोत्र है। 'भारतेन्दु प्रकाश' महाकवि हरिश्चन्द्र के प्रति श्रद्धांजलि है। 'कल्पना-सुख' और 'मानस' अन्तर्मुखी रचनाएँ है। विदाई, नीरव, प्रेम, विस्मृत प्रेम और विसर्जन शृङ्गारी कविताएँ हैं। इन २२ कविताओं मे 'रसाल मंजरी' और 'विदाई' उच्च कोटि की हैं।

'शारदीय शोभा' में रजनी और प्रभात का वर्णन है, अन्त में चार पंक्तियाँ कमलिनी पर और चार भ्रमर पर हैं। 'शरद-पूर्णिमा' में

सर्वत्र छाई हुई नीरवता तथा शोभा का और चन्द्रमा के 'मोहनी-मन्त्र से अंधकार के भाग जाने का वर्णन है। 'रसाल मंजरी' प्रसाद जी की प्रारम्भिक ब्रजभाषा की कविताओं में एक अत्यन्त सफल कृति है।' इसमें उन्होंने छः रोला छन्दों में मंजरी के कौमार्य का बड़ा मनोहर वर्णन किया है और मलयानिल, मधुकर और कोकिल से कहा है कि मंजरी अभी नवीन है, अभी इससे दूर हट कर बैठो। 'रसाल' मे कहा है कि इस तरुवरराज के कारण कानन में मधुर गन्ध भरी है, मधु-लोभी भ्रमर गुंजार करते हैं और पथिक को शीतल छाया मिलती है। 'वर्षा में नदी-कूल' में मेघों और नदी की हिलोरों का वर्णन है। उद्यानलता से सम्बोधन किया गया है कि सुमनों से लदी, पुष्प-दृग में मकरन्द-अश्रु भरे, तुम कौन हो जो इस नीरस तरु को भुज-पेंच में लिए हो ? हे प्रभात कुसुम ! तुम्हारा रूप कितना शुभ है, तुम्हारी प्रतिभा कितनी अनुपम है—सूर्य की किरण पाकर तुम इतराने लगे हो ! 'नीरद' ३२ पंक्तियो की कविता है—मेघ का कितना अद्भुत विस्तार है, प्रकृति प्रसन्न हो उठती है, चातक भी नाच उठते हैं, लेकिन पथिक और विरही का इसे कुछ विचार नहीं। 'संध्या तारा' का रूप कितना सुन्दर है—'कामिनी चिकुर भार अति घन नील, तामें मणि सम तारा लसत सलील।' प्राची की तरुणी प्रभात-मिलन की आशा से तुम्हें एकटक देख रही है। 'चन्द्रोदय' और 'इन्द्रधनुष' में ब्रजभाषा-काव्य की परम्परागत उपमाओं की भरमार है। प्रकृति-वर्णन में कवि की उत्सुकता तो है, तन्मयता नही है। विनय-कविताओं में परमात्मा के सर्वव्यापक, आशुतोष, प्रकाशमान् रूप का वर्णन, और स्तुति है। 'शारदीय महापूजन' सरस्वती-वन्दना है। शारदा को विश्वधारिणी, विश्वपालिनी, विश्वेशी आदि नामों से पुकारा गया है। 'भारतेन्दु प्रकाश' में भारत के उस इन्दु का अभिनन्दन किया गया है जिसके उदय से हिन्दी की रजनी-गन्धा खिल उठी। 'कल्पना-सुख' में

कल्पना को सुख-यान और जीवन-प्राण कहा गया है। उसमें प्रत्यक्ष, भूत और भविष्य को रँगने की शक्ति है। आशा और स्फूर्ति का संचार उसी के द्वारा होता है। 'नव शक्ति लहि अनमोल, कवि करत अद्भुत खेल।' 'मानस' में मन की गतियों का वर्णन है—चिन्ता, हर्ष, विषाद, क्रोध, निर्वेद, लोभ, मोह, आनन्द, आशा, निराशा आदि। विषय और शैली की दृष्टि से कविता में नवीनता है। 'विदाई' में प्रेमी हृदय की भाव-विदग्धता भरी है। हे प्रिय, तुम आए थे तो नव वसन्त की तरह हृदय खिल गया था; अब ग्रीष्म की तपन छोड़े जा रहे हो, जिससे हृदय जल जाए।

प्रिय जबहिं तुम जाहुगे, कछुक यहाँ से दूरि।
आँखिन में भरि जायगी तव चरनन की धूरि॥

आरंभ में कवि अपने विश्वास की दृढ़ता प्रगट करते हैं—

जाहु हमारे आह ये रच्छक तुम्हरे पास।
जो ले ऐहैं खींचि पुनि तुम को हमरे पास॥

'नीरव प्रेम' में प्रसाद ने आदर्श प्रेम की व्याख्या की है। प्रेम कमल-कोष में बंद मकरन्द की तरह होता है। अधरों के प्रथम भाषण की तरह वह मन-प्राण के भीतर ही भीतर गूँजता रहता है। 'विस्मृत प्रेम' में कवि का कहना है कि निराशा में प्रेम का राग नहीं छूटता, प्रिय का विस्मरण नहीं होता। 'विसर्जन' में 'विदाई' के से उद्गार है।

यह बात प्रसाद की इन आरंभिक कविताओं में भी देखने की है कि प्रेम का रूप कितना श्लील और स्वस्थ है। कविताओं के शीर्षक आधुनिक और मौलिक हैं; छंद भले ही सब के सब पुराने हैं।

'मकरन्द-विन्दु' के अन्तर्गत २३ कवित्त, ३ सवैया, १ दोहा और १४ पद हैं। ये कविताएँ भी सब की सब ब्रजभाषा में हैं।

कवित्तों के विषय और बोल इस प्रकार हैं—

वसन्त—रे रे बसन्त रस भीने कौन मन्त्र पढ़ दीने तू।

चकोरी और चाँद—चैत चन्द नेकु तो चकोरी को निहारिये।

पिक—लगाए धुन कौन की कहौ तो कौन को चहौ।

मेघ और चातक—फल कछु पाईहै यो प्रीति को पसारि कै।

सुमन—कानन मे पुन्य पूर पोखे पुञ्ज प्रेम के।

आओ प्यारे—वेगि प्रानप्यारे नेकु कंठ से लगाओ तो।

पुलक उठै रोम रोम खड़े स्वागत को।

पसीजिए—भरि भरि प्याले प्यारे प्रेमरस पीजिए।

तुम अन्तर में हो—राग है बजत गुनी लीजो पहचानी कै।

हृदय में कौन—आसन जमायो जनु कमला कमल पर।

तुम्हारी शरण—हिलि उठै हिय जहाँ आसन तुम्हारे है,

तऊ तुम न निहारत ऐसे अचल न होइये।

दीनबन्धु—एहो दीनबन्धु दीनबन्धुता बिसारी क्यों?

अन्य कवित्तों के स्वार्थहीन तरु, वह प्यारा क्यों, एरी कली भली, हे करुणानिधान, बरखा सी बसन्त, अंक भरि भेंटो, एरे मेरे आँसू, प्रेम प्रतीति, मेरी लली, शीर्षक दिये जा सकते हैं। सवैयों में क्रमशः ईश-स्तुति, प्रेम का फल और उसकी कुटिलाई वर्णित है। पदो की टेकें ये हैं—दियो भल उतर ह्वै के मौन, ढीठ ह्वै करत सबै ही आप, पुन्य और पाप न जान्यो जात, छिपि के झगड़ा क्यों फैलायो, ऐसो भल लेइ का करिहै, और जब कहिहैं तब का रहिहैं, नाथ नहीं फीकी परै गुहार, मधुप ज्यों कंज देखि मँडरावै, मेरे प्रेम को प्रतीकार, प्रिय स्मृति कंज में लवलीन, अरे मन अबहूँ तो तू मान, आज तो नीके नेह निहारो, यह तो सब समुझयो पहले ही।

'मकरन्द विन्दु' की कविताओं के विषय ईश-वन्दना, प्रेम और प्रकृति ही हैं। कुछ एक पद्यों को छोड़कर इन कविताओं में

आत्माभिव्यंजना की प्रधानता है। विनय के पदों में दैन्यभाव है। पर स्मरण रहे कि प्रसाद स्वयं भक्त नहीं थे ; उन्होंने भक्ति की परंपरा को अपनाया। धीरे-धीरे उन्होंने ऐसी भक्तिमूलक कविताएँ लिखना वंद कर दिया। प्रकृति-संबंधी कविताओं में ऋतुवर्णन तो पुरानी परंपरा के अनुकूल है, पर अनेक आलंवनों के प्रति जिज्ञासा और कुतूहल नवीनता लिये हुए है। वसन्त से कवि की जिज्ञासा है—

रे वसन्त रस भीने कौन मन्त्र पढ़ दीने तू।

पिक से वे पूछते है—

लगाए धुन कौन की कहौ तो कौन को चहौ।

इसी प्रकार चातक, कोकिल और मलयानिल से भी वे प्रश्न पूछते हैं। यही जिज्ञासा उनकी आभ्यन्तरिक कविताओं में भी मिलती है—तुम अन्तर् में कौन हो जो आसन जमाये बैठो हो ? इसी से आगे चलकर रहस्यवाद की प्रक्रिया चल पड़ी।

सम्राट् एडवर्ड सप्तम की मृत्यु पर सन् १६१० ई० में 'शोकोच्छ्वास' नाम से एक पुस्तिका प्रकाशित हुई। इसके दो भाग हैं—'अश्रुप्रवाह' और 'समाधि-सुमन'। पहले भाग में आठ और दूसरे में छः छंद हैं। रचना अत्यन्त साधारण है। भावाभिव्यक्ति में नवीनता दर्शनीय है, जैसे--

वसुधे, देखहु यह वह सुकुमार देह है,
जाको चाहत थे सबही दरसन सनेह है।
सो तव कठिन कठोर अंक में सो रही है,
सयतन राखहु याहि सबहि दृग जोइ रही है।

प्रसाद जी की व्रजभाषा की कविताओं में 'प्रेमपथिक' को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। पूरी कृति इस समय अप्राप्य है। इसका जो अंश 'इंदु' में प्रकाशित हुआ था, वही उपलब्ध है। इसमें 'प्रेम' और

'पथिक' का सम्भाषण विशेषतः भावपूर्ण है। प्रेम को वासनामुक्त सार्वभौमिक स्तर पर लाकर प्रस्तुत किया गया है। प्रेमी की विह्वलता, स्मृति और विरह-वेदना का चित्रण मार्मिक ढंग से हुआ है। प्रेम को सम्बोधित करके जो उपालम्भ दिये गये हैं उनमें कवि की मौलिकता झलकती है—

तोहि न आवत दया सु हिया कठोर।
विरह तपावत अंगहि निशि अरु भोर॥
तेरे तीरथ में करि मज्जन आस।
भये तृप्त नहि कबहूँ बुझी न प्यास॥ इत्यादि

प्रेम के इस पथिक की कहानी का आरम्भ इस प्रकार होता है—

छाँडि के अभिराम अति
सुखधाम चारु आराम,
पथिक इक कीन्ह्यो गमन
सुप्रवास को अभिराम।

पथिक जब सीमा पर पहुँचा तो आँखों में आँसू भर आए। ग्राम-देवता को प्रणाम कर वह आगे बढ़ा। कुछ दूर चलने पर वह सूर्य का प्रखर कर-ताप सहन नहीं कर सका और वह एक वट की शीतल छाया में बैठ गया। अपने प्रिय की याद आ गई। तभी चातक बोल उठा—'पी कहाँ! पी कहाँ!' पथिक ने कहा—"विहग, यह क्या! अपनी प्रेयसी के पास रह कर भी 'पी कहाँ' की पुकार करते हो! तुम्हारा यह 'पी कहाँ' सुन कर वियोगियों को हूक सी लगती है।" पथिक आगे बढ़ा। उसे एक विमल जलपूर्ण सरसी मिली। पथिक निर्मल जल पीकर सोपान पर बैठ गया और पवनांदोलित जल-लहरियों की क्रीड़ा देखने लगा। उठ कर वह और आगे बढ़ा। चलते-चलते वह एक मरुभूमि म पहुँचा। उसके कपोलों पर अविरल अश्रुधारा बहने लगी। दीर्घ निःश्वास ले, वह

मन ही मन सोचने लगा। तत्काल एक पुरुप वहाँ प्रगट हुआ। उसने कहा कि प्रेम-मार्ग बड़ा विकट है।

अहो पथिक, यह सोई उपवन कुंज।
जामें भूलि धरे नहिं पग अलि-पुंज॥
यहि उपवन में रहे वायु कहँ नाहिं।
या मारुत के लगे कली मुरझाहि॥
लखि सुकुमार तुम्हें हम शिक्षा देत।
फिरहु पथिक यह मग अति दुःख निकेत।

पथिक को ज्ञात हुआ कि वह प्रेम है। पथिक उपालम्भ देने लगा, तब प्रेम बोला—

हिए राखि कछु धीरज, सहि कछु पीर।
आशा और निराशा नैनन नीर॥
पथिक धीर धरि चलिए पथ अति दूर।
है कटिबद्ध सदा सनेह में चूर॥

सामान्यतः इन ब्रजभाषा की कविताओं का रूप-विधान परम्परा-भुक्त है। तरुण प्रसाद के अनुभव अभी सीमित, अव्यवस्थित और अपूर्ण हैं। भारतीय साहित्य के परिचित अध्ययन से उन्हें जो प्रेरणा प्राप्त हुई, और भारतेन्दु-युग से उन्होंने जो कुछ ग्रहण किया, उसी को उन्होंने अपनी शैली में अभिव्यक्त किया। लेकिन इस शैली में मौलिकता और विकास के अंकुर विद्यमान हैं। अभिव्यक्ति में नवीनता, भावों की सूक्ष्मता, विपयों की विविधता, शीर्षकों की आधुनिकता, नई चेतना की सूचना, जिज्ञासा की विकासशीलता, पद्यों की गीतात्मकता और सरसता इस काव्य की विशेपताएँ हैं। स्फुट कविताओं में प्रकृति की प्रधानता है लेकिन प्रकृति से अभी कवि का तादात्म्य नहीं हो पाया। प्रकृति में मानवीय भावनाओं को

आरोपित करने की प्रवृत्ति तरुराज की उदारता और जलद की आनंद-वर्षा में देखी जा सकती है। प्रार्थना के पद्यों में श्रद्धा-भक्ति परम्परागत रूप में वर्णित हुई है। प्रेम का स्वस्थ और आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करके प्रसाद ने रीतिकाल के कलंक को धोने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया है। इसमें सन्देह नहीं है कि इन रचनाओं का वाह्य रूप प्राचीन और परम्परागत है, लेकिन धीरे-धीरे प्रसाद ने इसका भी परिष्कार और सुधार किया। उदीयमान कवि के कर्तृत्व को समझने के लिए व्रजभाषा की इन कविताओं का ऐतिहासिक महत्त्व है। प्रबन्ध-काव्यों में 'वन-मिलन', फुटकर कविताओं में 'रसालमंजरी' और 'विदाई', 'मकरन्द-विन्दु' के कतिपय पद और 'प्रेम-पथिक' प्रसाद की व्रजभाषा की कृतियों में सफल और प्रतिनिधि मानी जा सकती हैं। उनमें भी 'प्रेम-पथिक' सर्वोत्कृष्ट है।

खड़ी बोली की प्रारम्भिक कविताएँ

'प्रेम-पथिक' के ८ वर्ष बाद इसी का परिवर्तित परिवर्धित अतुकांत खड़ी बोली हिन्दी का रूप प्रकाशित हुआ।

सरिता की रम्य तटी में प्रकृति के नाना सौन्दर्यों से घिरी हुई एक कुटी थी। एक तापसी व्यतीत-यौवना, पीतवदना, वैठी थी कि एक पथिक आ गया जिसने पूछे जाने पर अपना परिचय दिया—"मेरे पिता के एक मित्र थे, जिनकी एक प्रेम-पुतली कन्या थी। हम दोनों इकट्टे खेला करते थे। 'खिली चाँदनी में खिलते थे एक डाल से युगल कुसुम।' मेरे पिता ने मरते समय मुझे अपने मित्र को सौप दिया। अब हम दोनों का सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो गया। 'खेल खेलकर खुली हृदय की कली मधुर मकरन्द हुआ।' जीवन का नया-नया उल्लास था। एक दिन मैंने देखा कि चमेली का फलदान जा रहा है। वह दिन भी आया कि 'शहनाई बजती थी

मंगल पाठ हो रहा था घर में।' मेरे जीवन की सर्वस्व किसी और को सौंपी जा रही थी। मै भग्न हृदय से निकल पड़ा—'विदा हुआ आनन्द नगर से, जन्मभूमि से, जननी से।' 'गिरि कानन जनपद सरिताएँ कितनी पड़ीं मार्ग के बीच।' पपीहे का 'पी कहाँ' सुन कर मै विह्वल हो उठा। एक दिन एक नदी के किनारे निराश बैठा आँसू वहा रहा था, चन्द्रमा को देख कर 'अहा चमेली का सुन्दर मुख हृदय-गगन में उदित हुआ।' बीती बातें याद करके तन्द्रा आने लगी। उस समय 'देवदूत सा चन्द्र-विम्ब से एक व्यक्ति उज्ज्वल निकला।' और कहने लगा—

'पथिक, प्रेम की राह अनोखी भूल भूल कर चलना है,
सोच समझ कर जो चलता है वह पूरा व्यापारी है।
'इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।
'प्रेम जगत का चालक.........
इसका है सिद्धान्त मिटा देना अस्तित्व अहा अपना
प्रियतममय यह विश्व निरखना फिर उसको है विरह कहाँ।'

यह कह वह व्यक्ति अन्तर्धान हो गया। मुझमें एक नया उत्साह भर गया।"

तापसी ने पूछा, "क्यों, किशोर, क्या अब भी तुमको वह पुतली याद आती है?" किशोर ने पहचाना कि यह तापसी तो मेरी चमेली ही है। चमेली ने वताया कि ससुराल में मुझे दासी की तरह काम करना पड़ता था। पति मर गये तो नरपिशाचों की कुदृष्टि पड़ने लगी और एक वृद्ध द्वारा प्रेरित हो कर मै वनवासिनी हुई।

चारों दृग आँसुओं के चौधारे वहाने लगे। पथिक ने विश्व-प्रेम की व्याख्या करते हुए चमेली को सान्त्वना दी। 'उस सुन्दरतम का सौन्दर्य विश्वम्भर में छाया है।' 'एक कामना रखो हृदय मे, सव

उत्सर्ग करो उस पर।' 'चलो मिलें सौन्दर्य प्रेमनिधि में।' चमेली ने स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा—'जहाँ अखंड शान्ति रहती है वहीं सदा स्वच्छंद रहें।'

इस प्रकार कवि का प्रेम एक विशाल धरातल तक पहुँच गया है। व्यक्ति से उठ कर विश्व में अपना प्रेम बिखेर देने में वे जीवन की सार्थकता मानते हैं। प्रेम से अखंड शान्ति की प्राप्ति होती है। प्रेम एक सौरभ है। प्रेम जगत् का चालक है। रूपजन्य प्रेम तो केवल मोह होता है। आदर्श प्रेम में सात्विकता होती है और वह त्याग माँगता है—

प्रेम यज्ञ मे स्वार्थ और कामना हवन करना होगा
प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो।

प्रेम प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सब की समता है।

इस कविता में प्रसाद ने जीवन-सम्बन्धी अपने अनेक अनुभवों को भी व्यक्त किया है। जीवन के पथ में सुख-दुःख दोनों हैं—

दुख सुख में उठता गिरता संसार तिरोहित होगा।
एवं दुख सुख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का, मन का।

इस ज़माने की मैत्री मुँह-दिखावे की है, सच्ची मित्रता तो आकाश-कुसुम है—

क्षण भर में हो बने 'मित्रवर', मुँह पीछे फिर दुर्जन हो।

दुष्ट काली रात से भी अधिक भयानक होता है। मनुष्य के जीवन में नियति का बड़ा हाथ रहता है। इत्यादि।

इस प्रकार, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, यह छोटी सी आख्यायिका हिन्दी में एक नवीन भाव-धारा का आगमन सूचित करती है। भाषा, छंद और भावाभिव्यक्ति के भी इस रचना में नये-नये प्रयोग हुए हैं। संगीतात्मकता, लाक्षणिकता और वर्णनात्मकता इसके अन्य गुण हैं। उपमानों की स्वच्छता और नवीनता

दर्शनीय है—

दया स्रोत सी जिसे घेर कर वहती थी छोटी सरिता।

अथवा, सच्चा मित्र कहाँ मिलता है, दुखी हृदय की छाया सा।
अथवा, रजनी अपने शान्ति-राज्य-आसन पर आकर वैठ गई।
प्रारम्भिक कविताओं में 'प्रेम-पथिक' सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है।

व्रजभाषा के 'प्रेमपथिक' के साथ ही खड़ी वोली के 'प्रेमपथिक' का परिचय उपयोगी समझ कर करा दिया गया। अन्यथा इसकी रचना खड़ी वोली की वहुत-सी अन्य कविताओं के वाद हुई थी, तभी तो इसमें इतनी प्रौढ़ता पाई जाती है। वास्तव में खड़ी वोली की पहली कविता 'चित्र' थी जो सन् १६११ में प्रकाशित हुई। कविता वहुत ही साधारण और निष्प्राण सी है।

आशा तटनी का कूल नहीं मिलता है
स्वच्छन्द पवन विन कुसुम नहीं खिलता है।
कमलाकर में अति चतुर भूल जाता है
फूले फूलों पर फिरता टकराता है।

आशा-तटनी रूपक में नवीनता अवश्य है।

करुणालय—प्रसाद जी का यह दृश्यकाव्य गीति-रूपक के ढंग पर लिखा हुआ है। पृष्ठसंख्या २६ और पंक्तियों की संख्या २२२ है। पुस्तक पाँच दृश्यों में समाप्त हुई है। अयोध्या-नरेश हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र रोहित को वरुण की भेंट करने की प्रतिज्ञा की थी; किन्तु वे वलि न दे सके। राजा को भ्रष्ट-प्रतिज्ञ देख कर वरुण कुपित थे। एक दिन हरिश्चन्द्र अपने सेनापति ज्योतिष्मान के साथ नौका-विहार करने गये। अचानक उनकी नौका जल में स्तब्ध हो गई। उन्होंने जान लिया और पुत्र की वलि देने का निश्चय किया। रोहित यह जानकर अपनी सुरक्षा के हेतु अजी-

गर्त के आश्रम में चला गया और उसके मँझले पुत्र शुनःशेफ को सौ गायों के वदले में क्रीत करके ले आया। यज्ञशाला में रोहित के स्थान पर शुनःशेफ के वलि देने का आयोजन किया गया। यूप से वाँध कर ज्यों ही शस्त्रप्रहार किया जाने लगा त्यों ही एक दासी (सुव्रता) न्याय की भीख माँगती यज्ञशाला में आ उपस्थित हुई। उसी समय महर्षि विश्वामित्र भी आ गये। वे कुलगुरु वशिष्ठ को ऐसा घृण्य नरमेध करने के लिए डाँटने लगे।

कहो कहो इक्ष्वाकु वंश के पूज्य हे!
आः महर्षि! कैसा होता यह काम है?
हाय! मचा रखा क्या अंधेर है?
क्या इसमें है धर्म? यही क्या ठीक है?
किसी पुत्र को अपने बलि दोगे कभी?
नहीं, नहीं! फिर क्यों ऐसा उत्पात है।

ज्ञात हुआ कि सुव्रता विश्वामित्र की गंधर्व-विवाहिता पत्नी और शुनःशेफ की माता है। विश्वामित्र ने उसे जंगल में छोड़ दिया था और वहीं शुनःशेफ का जन्म हुआ था। सुव्रता शुनःशेफ को छोड़ दासी वन गई थी। विश्वामित्र ने अव दोनों को पहचान लिया। विछुड़ा हुआ परिवार मिल गया। वरुण ने भी प्रसन्न होकर शुनःशेफ के वंधन खोल दिये। यह सब उस करुणालय की कृपा का ही फल था।

इसमें रोहित की एक प्रार्थना है जिसमें १४ पंक्तियाँ हैं जो सारी कृति में श्रेष्ठ हैं और अनुभूति-प्रधान हैं। इन्द्र के कर्मवादी वचन भी वड़े महत्त्वपूर्ण हैं। प्रारंभ में प्रकृति की अत्यंत सुंदर भूमिका है—

सघन लता दल मिले जहाँ हैं प्रेम से
शीतल जल का स्रोत जहाँ है वह रहा।
हिम के आसन बिछे, पवन परिमल मिला
बहता है दिन-रात, वहाँ जाना तुम्हें।

रूपक में विश्वकल्याण की भावना व्याप्त है। बौद्ध धर्म की अहिंसा का प्रभाव भी लक्षित होता है—

अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया,
रे मनुष्य कितने नीचे तू गिर गया।
आज प्रलोभन भय तुझसे करवा रहे,
कैसे असुर कर्म अरे तू क्षुद्र है।
और धर्म की छाप लगाकर मूढ़ तू,
फँसा आसुरी माया में हिंसा जगी।

यत्र-तत्र तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों पर प्रकाश डाला गया है। चरित्र-चित्रण का विशेष आग्रह नहीं है। कथा-प्रवाह में कोई पात्र अपना व्यक्तित्व उभार नहीं पाता। अल्बत्तः रोहित और शुनःशेफ के आदर्श और नैतिक आधार स्पष्ट होकर आये हैं। इन्द्र के आत्मवाद की व्याख्या करने की चेष्टा सी की गई है। कथा पौराणिक है पर उसमें के पात्र मानवीय धरातल पर लाये गये हैं। उनमें अपनी दुर्बलताएँ भी हैं।

कविता करुणा का संदेश और धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों की कटु आलोचना प्रस्तुत करती है।

काव्य की दृष्टि से 'करुणालय' एक साधारण कृति है, परन्तु प्रसाद की विचाधारा को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह हिन्दी का प्रथम गीति-नाटक है। इस कविता द्वारा कवि ने हिन्दी में अतुकांत कविता का क्रम चलाया। भाव कुछ-कुछ विकसित और व्यवस्थित दिखाई देते हैं।

महाराणा का महत्त्व—यह भी २४ पृष्ठों का एक भिन्नतुकान्त काव्य है जिसके पाँच खंड हैं। नव्वाब अब्दुर्रहीम खानखाना का हरम राजपूताने के मरुस्थल के एक भाग से होकर स्थानान्तरित हो रहा था। बेगम को प्यास लगी। तब नायक ने आगे एक मरु-

उद्यान (शाद्वल) की ओर संकेत करके कहा कि वहाँ तक चलने पर ही पानी मिल सकेगा। सब उधर बढ़े। कुँअर अमरसिंह ने मुसलमान सैनिकों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें परास्त कर नव्वाब की पत्नी को बंदी बनाकर ले गया। अरावली की तलहटी में महाराणा प्रताप के सामने जब बेगम को उपस्थित किया गया तो उन्हें बड़ा खेद हुआ और उन्होंने उसे सादर लौटा देने का आदेश दिया—

सिंह क्षुधित हो, तब भी वह करता नहीं
मृगया डर से दबी शृगाली वृन्द की।
शत्रु हमारे यवन इन्हीं से युद्ध हो
यवनी गण से नहीं, हमारा द्वेष है॥

यही तो महाराणा का महत्त्व है। नव्वाब महाराणा से युद्ध करने आये थे, लेकिन अब दिल्ली लौट जाने का निश्चय किया। वहाँ पहुँच कर उन्होंने अकबर के सम्मुख महाराणा की वीरता की मुक्त हृदय से प्रशंसा की। अकबर ने अपनी सेना को वापस बुला लेने का आदेश दे दिया।

कविता का प्रारंभ और अंत नाटकीय ढंग से हुआ है। दूसरे और तीसरे खंड की भूमिका में प्रकृति के सुन्दर खंड-चित्र हैं। पाँचवें खंड में अकबर के दरबार के विलास का वर्णन है। रमणी-रूप का चित्रण विशेषतः कलापूर्ण है।

देख ललाई स्वच्छ मधूक कपोल की।
पुच्छमर्दिता वेणी भी थर्रा उठी,
आभूषण भी झनझन कर बस रह गये।

प्रथम और चतुर्थ खंड संभाषण शैली में आरम्भ होते हैं। प्रथम खंड की पहली दो पंक्तियाँ ये हैं—

"क्यों जी कितनी दूर अभी वह दुर्ग है?"
शिविका में से मधुर शब्द यह सुन पड़ा।

नाटकीय शैली का सारी कविता में निर्वाह हुआ है। छोटे से कथानक में चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, भावोत्कर्ष सब मिल जाते हैं। कविता आदर्शवादी है, इसमें राष्ट्रप्रेम और वीरपूजा की भावना ओतप्रोत है। भाषा प्राञ्जल और ओजपूर्ण है। नवीन उपमाओं का यत्र-तत्र सुन्दर सफल प्रयोग हुआ है, जैसे

लू समान कुछ राजपूत भी आ गये।

अथवा

प्रखर ग्रीष्म का ताप मिटाता था वही
छोटा सा शुचि स्रोत, हटाता क्रोध को
जैसे छोटा मधुर शब्द हो एक ही।

कानन कुसुम—इसमें प्रसाद जी की सन् १९०९ से १९१७ तक की ४९ स्फुट कविताएँ और छः आख्यानक कविताएँ संगृहीत हैं। अधिकतर कविताएँ इतिवृत्तात्मक हैं और उन में 'पराग' अथवा 'मकरन्द विन्दु' की सी निबन्धात्मक शैली का प्रयोग हुआ है, जैसे पतित पावन, रमणी हृदय, याचना, खंजन, हाँ सारथे रथ रोक दो, गंगा सागर, मोहन इत्यादि में। काव्य-गुणों की इसमें कमी है। कवि की स्वच्छन्द प्रवृत्ति प्रभो, करुणाकुंज, नव वसन्त, भक्ति योग, मलिना, जलविहारिणी, दलित कुमुदिनी और निशीथ नदी शीर्षक कविताओं में दिखाई देती है। प्रभो और करुणाकुंज कुछ-कुछ रहस्यात्मक भी हैं। प्रथम प्रभात, मर्मकथा, हृदयवेदना और प्रियतम पूर्णरूपेण आधुनिक हैं—इनकी भावधारा रहस्यात्मक और अभि-व्यंजना-प्रणाली छायावादी ढंग की है। तुम्हारा स्मरण, भाव-सागर, मिल जाओ गले और नहीं डरते शीर्षक कविताएँ भी रहस्यवादी हैं। चित्रकूट, भरत, शिल्पसौंदर्य, कुरुक्षेत्र, वीर बालक, श्रीकृष्ण जयन्ती—ये छः प्रबन्धात्मक हैं। 'कानन कुसुम' की प्रायः कविताएँ बाह्य विषय परक हैं। 'चित्राधार' की ब्रजभाषा की कविताओं की तरह

इनके विषय भी ईश्वर-स्तुति, प्रकृति-प्रेम आदि हैं। कुछ कविताओं में जिज्ञासा और कुतूहल की भावना भी उसी तरह की मिलती है। कुछ में गम्भीर चिन्तन, जीवन-दर्शन और कर्मशील संदेश मिलता है। कुछ में उल्लास के साथ हलकी सी विषाद की झलक स्पष्ट दिखाई देती है, जैसे करुण क्रन्दन, करुणाकुंज, निशीथ-नदी, एकान्त में और दलित कुसुम में। कहीं-कहीं नाटकीयता के दर्शन भी होते हैं।

यहाँ पर कवि का 'समर्पण' उल्लेखनीय है—

"प्रियतम,

जो उद्यान से चुनकर हार बनाकर पहनते हैं, उन्हें कानन-कुसुम क्या आनन्द देंगे? यह तुम्हारे लिए हैं। इनमें रंगीले और सादे, सुगंधवाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुए, पराग से लिपटे हुए, सभी तरह के कुसुम हैं। असंयम भाव से एकत्र किये गये हैं। भला ऐसी वस्तु को तुम ग्रहण न करोगे तो कौन करेगा?"

प्रसंगवश इसकी तुलना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के एक समर्पण से की जाय—

"हृदयवल्लभ,

यह मधु मुकुल तुम्हारे चरण-कमल में समर्पित है, अंगीकार करो। इसमें अनेक प्रकार की कलियाँ हैं, कोई स्फुटित, कोई अस्फुटित; कोई अत्यंत सुगंधमय, कोई छिपी हुई सुगंध लिये। किन्तु प्रेम सुवास के अतिरिक्त और किसी गंध का लेश नहीं। तुम्हारे कोमल चरणों में यह कलियाँ कहीं गड़ न जायँ, यही संदेह है। तुम्हारे बाग के फूल तुम्हें छोड़ और कौन अंगीकार कर सकता है, इससे तुम्हीं को समर्पित हैं।"

समर्पण में ही नहीं, अनेक कविताओं में भी भारतेन्दु का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। अनेक में द्विवेदी-युग का प्रभाव है, और

अनेक कविताएँ ऐसी हैं जिनमें प्रसाद जी की मौलिकता, नवीनता और व्यक्तिगत विशेषता प्रगट है।

विनय की कविताओं में 'चित्राधार' के पदों को सी भक्ति तो है ही, लेकिन कवि अब भगवद्दर्शन और आध्यात्मिकता की ओर प्रवृत्त है। उसे चन्द्रिका, नदी, पर्वत सभी में 'उस' की छाया दिखाई देती है। उसे उस सत्ता से शक्ति और चेतना मिलती है, और धीरे-धीरे यह सत्ता रहस्यमय प्रतीत होने लगती है। करुण क्रन्दन, विनय, याचना, पतितपावन, मन्दिर, नमस्कार, वन्दना और प्रभो में क्रमशः इस भावना का विकास देखा जा सकता है।

करुण-क्रन्दन—कवि जीवन के झंझटों से त्रस्त हो कर भगवान् से करुणा के लिए विनय करता है।

'है बुद्धि चक्कर मे भँवर सो घूमतो उद्वेग में,' तो हम पापी, दुःखी लोगों को तेरे बिना कौन है।

'गुण जो तुम्हारा पार करने का उसे विस्मृत न हो।'
करुणानिधे! यह करुण क्रंदन भी जरा सुन लीलिए।
कुछ भी दया हो चित्त में तो नाथ! रक्षा कीजिए॥
हम मानते, हम हैं अधम दुष्कर्म के भी छात्र हैं।
हम हैं तुम्हारे इसलिए फिर भी दया के पात्र हैं॥

विनय—हे प्रभु! हमारे हृदय-मन्दिर में निज धाम बनाओ, अपने अभय हाथ हमारे ऊपर रखो, हमारा दुःखद्वन्द्व काट दो—

मिलो अब आके आनन्दकन्द, रहें तव पद मे आठों याम।

याचना—जीवन की विषमताओं में भी, हे प्रभो, हम तेरे चरणारविन्द मे लीन रहें। 'जब दुःख कृतघ्नता, छल स्वार्थ ने घेरा हो', अथवा यह मन विषयों के कुचक्र मे पड़ा हो।

'हम हों कही, इस लोक मे उस लोक मे भूलोक में।
तव प्रेम-पथ में ही चलें, हे नाथ? तव आलोक में।'

पतितपावन—जो कोई भागवान् के पद्मपाद में पड़ता है, पूत हो जाता है। कोई कितना ही पतित क्यों न हो, संसार के गर्त में पड़ा हो, वह उस करुणा-निधान की शरण में पड़ कर पावन हो जाता है।

पतित को ही बचाने के लिए वह दौड़ आता है।

मन्दिर—जब परमात्मा सर्वव्यापी है तो मन्दिर में भी तो है। जब वह देहमन्दिर में विद्यमान है तो देवमन्दिर में भी वही है। प्रस्तर मूर्ति में भी वहीं है। सर्वत्र उसी की लीला है।

उसका अनंत मंदिर, यह विश्व ही बना है।

नमस्कार—भगवान् का मन्दिर सब के लिए उन्मुक्त है। उस मन्दिर के आराम प्रकृति-कानन है और दीप इन्दु आदि हैं। उस मन्दिर के निरुपम निरामय नाथ को मेरा नमस्कार हो।

नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व-गृहस्थ को।

वन्दना—'जयति प्रेम-निधि! जिसकी करुणा नौका पार लगाती है।' विश्ववीणा में तेरी ध्वनि, कादम्बिनी के रस में तेरी कृपा, भव-कानन में तेरी शोभा है।

निर्विकार लीलामय तेरी शक्ति न जानी जाती है।

प्रभो—विमल इन्दु की किरणें तेरे ही प्रकाश का पता देती हैं। जिसे तेरी दया का प्रसाद देखना हो, वह सागर की ओर देखे। चाँदनी में तेरी मुस्कुराहट देखी जा सकती है। तुम प्रकृति रूपी कमलिनी को प्रकाशित एवं प्रफुल्लित करने वाले सूर्य हो।

असीम उपवन के तुम हो माली, धरा बराबर जता रही है।

'मोहन' में तुक-प्रणाली की उर्दू ग़ज़ल सी है जिसमें मोहन से अपने रूप और प्रेम का मतवाला बनाने की प्रार्थना की गई है।

बहुधा कविताएँ साधारण कोटि की हैं।

स्फुट कविताओं में प्रकृति-वर्णन प्रायः परम्परागत और इतिवृत्तात्मक है। विषय भी पुराने ढंग के हैं, जैसे वसन्त, ग्रीष्म, शरद्, सरोज, रजनीगंधा, कोकिल, दलित कुमुदिनी और खंजन। इनके वर्णन में भी मलयज, कंजकली, पिक, भ्रमर, सहकार-मंजरी, जलद, वल्लरी आदि का उल्लेख अधिक हुआ है। कुछ कविताओं में तो सरसता और सजीवता का अभाव है। प्रकृति के साथ कवि का तादात्म्य स्थापित नहीं हुआ। वे उसकी रमणीयता पर मुग्ध हैं। धीरे-धीरे कवि को प्रकृति के विभिन्न पदार्थों में मानवीय भावनाओं का आभास मिलने लगता है। रजनीगंधा के हृदय में अनुराग है। जलद से आनन्द के अंकुर विकीर्ण होते हैं। यही प्राकृतिक वस्तुएँ और इनके व्यापार आगे चलकर प्रतीक बनकर प्रयुक्त होने लगे। अनेक कविताओं की रहस्यात्मक प्रवृत्ति स्पष्ट है। प्रकृति के कण-कण में वह विश्वेश व्याप्त है। प्रकृति के पदार्थों में जो सौन्दर्य भरा है, वह उसी का है।

त्रस्त पथिक देखो करुणा विश्वेश की।
खड़ी दिलाती याद तुम्हें हृदयेश की।

(करुणा-कुंज)

लोग प्रियदर्शन बताते इंदु को,
देखकर सौंदर्य के इक बिंदु को।
किंतु प्रिय-दर्शन स्वयं सौंदर्य है
सब जगह उसकी प्रभा ही वर्य है॥

(सौन्दर्य)

प्रकृति को सहचरी के रूप में भी चित्रित किया गया है। प्रकृति के प्रति अब जिज्ञासा की भावना नहीं रही; अब तो कवि को प्रकृति में अपने प्रिय के दर्शन होने लगे हैं। प्रकृति से उन्हें संकेत और संदेश मिलते हैं। भावों का विकास क्रमशः निम्नलिखित कविताओं

में बढ़ता गया है—खंजन, ग्रीष्म का मध्याह्न, दलित कुमुदिनी, कोकिल, एकान्त में, रजनीगंधा, जलविहारिणी, निशीथ-नदी, सरोज, जलदावाहन, नव-वसन्त, करुणाकुंज और महाक्रीड़ा।

खंजन—स्वच्छ शुभ्र उषा का नव आलोक है। शरद् का रम्य दृश्य है। उसी में दो खञ्जन उड़ते दिखाई दे गये।

ग्रीष्म का मध्याह्न—दिवाकर अग्निकण छोड़ रहा है। धरा तप्त है। व्योम तक फैले धूलि-कणों में ज्वाला है। पेड़ों के पत्ते सूख कर गिर रहे है। पक्षी क्रन्दन करते है।

दलित कुमुदिनी—सुन्दर सरोवर में कुमुदिनी विकसित हो रही थी, चारों ओर उसका सौरभ बिखर रहा था। अकस्मात् किसी स्वार्थी मतवाले हाथी ने आ कर उसे पद-दलित कर दिया और उसका सौन्दर्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। 'पड़ी कण्टकाकीर्ण मार्ग में, कालचक्र गति न्यारी है।'

कोकिल—नवल रसाल पर मधुकर मत्त है, मकरन्द भरा है, मलयज चल रहा है। कुंज कंज सब नये हैं। ऐसे में, हे कोकिल, तुम भी नये उत्साह से गाओ।

एकान्त में—सन्ध्या का मनोहर समय है। श्रीसम्पन्न आकाश में जलद, कुसुमों से पूर्ण विटप-शाखाएँ, निर्जन प्रशान्त शैलपथ, हँसती चलती स्रोतस्विनी, वेगपूर्ण जल का सोता, उत्तुंग गिरि-शृंग में खड़ा तरुराज—ऐसे 'एकान्त में विश्रान्त मन पाता सुशीतल नीर है।'

रजनीगंधा—रजनी सखी के आगमन के साथ ही रजनी-गंधा खिल उठी।

'मधुमय कोमल सुरभि पूर्णिमा उपवन जिससे है
तारागण की ज्योति पड़ी फीकी इस से है।'

जल विहारिणी—चाँदनी खिली है। कुसुम विकसित हैं। दूर-दूर तक सुधा का सरोवर हिलोरें ले रहा है। सम्मुख एक गिरि-श्रेणी का

उपवन है। नीर की चंचल तरंगों में छोटी-सी तरी चली जा रही है। एक सुन्दरी के कंज-कर की उँगलियाँ तार बजा रही हैं। आनन्द की घटा छा गई है।

मलिना—नभ में बादल छाए हैं। तरुओं के संग लजीली लता लहरा रही है। फूल की डालियों पर बुलबुल और कोयल शोर मचा रहे हैं। वह बरसाती नाला, वह सुंदर अमराई, वह सघन कुंज— ये सब दृश्य कितने अनूठे हैं। इस पृष्ठभूमि में एक मलिन-वसना बाला चिंतित मुद्रा में बैठी है। यह नलिनी है जिसका यौवन खिलने वाला है।

निशीथ-नदी—तारे, धरा, पवन, तरुराजि सब शान्त हैं। नदी 'चली जा रही है अपनी ही सीधी धुन में।' उसे किसी से मोह है न द्वेष। 'गर्जन भी है नहीं कहीं उत्पात नहीं है।' इसका कलनाद शांति-गीत सा है। मनुष्य का भी 'कब यह जीवन-स्रोत मधुर ऐसा ही होगा।'

सरोज—सरोज से एक संदेश मिलता है। वह स्वयं पानी में रह कर भी निर्लिप्त है और तरंगों के बीच में भी विचलित नहीं होता। सरोज अलि को मकरन्द और समीर को सौरभ देता ही रहता है।

जलदावाहन—हे जलद! आओ! तुम्हारे बिना धरती प्यासी और आकाश शून्य है और लू की पंचाग्नि से जल रहा है। वल्लरियाँ पत्रहीन हो गई हैं। दूर्वादल झुलस गये हैं। 'शीघ्र आ जाओ जलद आनन्द के अंकुर उगें।'

नव वसन्त—इस कविता में प्रकृति को कामिनी और वसन्त को प्रेमी युवक बताकर उनके मिलन की कहानी कही गई है। मारुत ने कुसुम-कानन के मनोहर कुंज में बैठी सुंदरी को छेड़ दिया। वह सहकार-मंजरी सी खिल उठी। सामने एक युवक 'प्रियतमे' कहता हुआ आया। मधुर प्रेम जतलाकर उसने इसका पाणि-पल्लव स्पर्श किया। 'दृश्य सुन्दर हो गए, मन में अपूर्व विलास था।'

करुणा-कुंज—हे पथिक! तुम मृग-मरीचिका के पीछे किधर भटक रहे हो। 'अस्त पथिक देखो करुणा विश्वेश की।' इस वसन्त में मलयज, कुसुम-कली, पिक-पुंज, भ्रमर को क्यों नहीं देखते! वर्षा-जल, शरद्-शर्वरी, शिशिर-प्रभंजन तुम्हारे लिए क्या कुछ भी नहीं!

महाक्रीड़ा—प्रभात होने वाला है। तारे अपनी कान्ति खो देने को हैं। विहंगम गा रहे हैं। मलय-मारुत चला आ रहा है। कुंज-कली खिलने लगी है। लताएँ कुसुमित हैं। हे मेरे चितचोर! अब तुम्हारा छिपना संभव नहीं है। 'पुरुष प्रकृति का यह खेल चिरंतन है। इस कविता में कवि की रहस्यवादी प्रवृत्तियों का आभास मिलता है।

प्रेम-संबंधी कविताओं के शीर्षक ही नये नहीं, भावाभिव्यक्ति में भी मौलिकता है। इनमें भी विकास की अनेक स्थितियों का आभास मिलता है। बँगला, उर्दू, ब्रजभाषा और अंग्रेजी का प्रभाव कहीं-कहीं झलक जाता है, लेकिन मूल प्रेरणा प्रसाद के अन्तर की है। युवक कवि की आत्मानुभूति और व्यक्तित्व की छाप प्रायः सब रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। नहीं डरते, प्रथम प्रभात, मर्मकथा और हृदय-वेदना में कवि की व्यक्तिगत अनुभूति है—

सद्यः स्नात हुआ मैं प्रेम सुतीर्थ मे,
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था।

उल्लास, वियोग, स्मृति, वेदना, आदि प्रेम की अनेक स्थितियों का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से हुआ है। आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता होने के कारण ये कवितायें हृदय को छू लेती हैं। इनमें 'आँसू' के से भाव प्रस्फुटित होते दिखाई देते हैं। गंगासागर, विरह, तुम्हारा स्मरण, और मिल जाओ गले शीर्षक कविताओं का रहस्यवादी अर्थ भी लिया जा सकता है।

कुछ कविताओं में प्रकृति उद्दीपन के रूप में और कुछ में

सामञ्जस्य के हेतु वर्णित हुई है।

नही डरते—तुम हम से रूठ गये क्या ? हमने तुम्हें चाहा था, लेकिन हम तुम्हारे विनोद की सामग्री ही बन कर रह गये। हम जानते हैं कि प्रेम में धोखा होता है; पर हमने प्रेम किया, नहीं डरते।

मिथ्या ही हो, किंतु प्रेम का प्रत्याख्यान नहीं करते
धोखा क्या है, समझ चुके थे, फिर भी किया नही डरते।

हृदय-वेदना—प्रिय के विरह में प्रेममयी पीड़ा ही एकमात्र सहारा है। पीड़ा में प्रिय की मूर्त्ति बनती है, जिससे सुख मिलता है।

मै तो रहता मस्त रात दिन पाकर यही मधुर पीड़ा।

मर्मकथा—प्रियतम बदल गया, पर हम भी अपनी प्रेम-व्यथा किसी और से जाकर नहीं कहेंगे। वह कब तक रूखा बना रहेगा ? मुझे उसमें विश्वास है।

प्रियतम, वे सब भाव तुम्हारे क्या हुए
प्रेम-कंज किंजल्क शुष्क कैसे हुए ?
हम तुम, इतना अंतर क्यों, कैसे हुआ ?
हा हा ! प्राणाधार शत्रु कैसे हुआ ?

प्रथम प्रभात—कवि के जीवन का यह प्रथम प्रभात था 'जब उल्लास था हर्षोन्माद था...प्राण-पपीहा बोल उठा आनन्द में।' तब सौन्दर्य के सौरभ से युक्त प्रेम के स्पर्श से सर्वत्र गुदगुदी होने लगी।

भाव-सागर—तुम्हारे ऊपर मेरा जो निजस्व है, जो गर्व है, जो अहंकार है, उसके बदले में यह फटकार ! कुछ शिकायत करना चाहता हूँ पर मेरे भाव भाषा द्वारा प्रगट नहीं हो पाते।

अहो अनिर्वचनीय भाव-सागर सुनो
मेरी भी स्वर-लहरी क्या है कह रही।

प्रियतम—हमने तो तुम्हें सब कुछ सौंप दिया, तुम हमारा एकमात्र सहारा हो, पर तुमसे प्रेम नहीं मिला। करुणा मिली,

वह भी क्षण भर। हम तुम्हारी

स्मृति को लिये हुए अन्तर में जीवन कर देंगे निःशेष

कुछ भी मत दो अपना ही जो मुझे बना लो यही करो

पुतली बन कर रहें चमकते प्रियतम! हम दृग में तेरे।

गंगा-सागर—कवि अपने प्रिय को अगाध सागर मान कर कहता है—

'जलधि! मैं न कभी चाहती कि तुम भी मुझ पर अनुरक्त हो।

पर मुझे निज वक्ष उदार में जगह दो, उसमें सुख से रहूँ।'

'प्रथम प्रभात' और 'प्रियतम' कानन-कुसुम और झरना दोनो में संगृहीत हैं।

विरह—प्रिय के साहचर्य का सुख सामने आता है तो अविरल अश्रुधारा बहने लगती है।

हृदय द्रवित होता ध्यान में भूत ही के

सब सबल हुए से दीखते भाव जी के।

प्रेम की नींद मे स्मृति का जागरण होता है।

क्यों जीवन-धन! ऐसा ही है न्याय तुम्हारा क्या सर्वत्र?

तुम्हारा स्मरण—मेरी समस्त वेदनाएँ तुम्हारे स्मरण मात्र से विस्मृत हो जाती हैं और विश्व में सर्वत्र तुम्ही दिखने लगते हो—त्रिकुटी में देखें चाहे कुटी मे समाधि लगा कर देखें। हम तो तुम्हारी प्रसन्नता में प्रसन्न हैं। तुम हमें दूर करो, पर यह हृदय तो तुम्हारे निकट आना चाहता है।

मिल जाओ गले—प्रकृति के कण-कण में तुम व्याप्त हो। कुसुमित कानन की कमनीयता तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब है। मेरा हृदय भी तुम्हारे रस से सिक्त है। जिस मधुकर को अरविंद का परिमल छू गया हो, वह कुरबक पर क्यों मुग्ध होगा! 'अब न और भटकाओ मिल जाओ गले।'

सौन्दर्य, रमणी-हृदय, बालक्रीड़ा, धर्मनीति और गान निबन्धात्मक कविताएँ हैं। सौन्दर्य, मानवी हो या प्राकृतिक, सब उस दिव्य शिल्पी का कौशल है। वह प्रिय में हो अथवा नील नीरद में, चातक अथवा कलानिधि में, कमल अथवा भ्रमर में, उल्लास उत्पन्न करता है। इससे मन प्राण मुदित हो जाते हैं। रमणी-हृदय रहस्यमय है। वह समुद्र की तरह अथाह है। 'फल्गू की है धार हृदय वामा का जैसे, रूखा ऊपर भीतर स्नेह सरोवर जैसे।' कभी वर्षा सा शीतल कभी ज्वालामुखी के समान। बच्चे, तुम अपनी क्रीड़ा में इतने व्यस्त हो किसी की सुनते ही नहीं। तुम उद्यान के फलफूल तोड़ते फिरते हो। सब को हँसाते हो, सब की बात पर हँसते हो। लगता है तुम्हें कहीं से आनन्द की ढेरी मिल गई है। इन फुटकर कविताओं में 'धर्मनीति' सर्वोत्तम है। इसमें प्रगतिवादी स्वर सुनाई देता है। जो विधि, जो धर्मनीति कुटिलता को समृद्ध करे, सन्तोष और संयम को धिक्कृत करे, सद्भाव को बन्धन में डाल दे, कुत्सित नीति को प्रेरित करे, भय का प्रसार करे, वह धर्म नहीं है। धर्म तो भीति का नाशक होता है। धर्म नम्रता और करुणा का नाम है, जिससे 'दूर हो दुर्बलता के जाल, दीर्घ निःश्वासों का हो अत।' अन्त में करुणा को प्रणाम किया गया है। 'गान' में कहा गया है कि ऐसे युवक आगे चल कर महापुरुष बनेंगे जिनके लिए जन्मभूमि जननी हो, वसुन्धरा काशी हो, विश्व स्वदेश हो, ईश्वर पिता हो, जिनका मस्तक शीतल और रक्त उष्ण हो, सिर नीचा और कर ऊँचा हो, हृदय उदार और मन शान्त हो। इस कविता में भी कवि का स्वदेश-प्रेम और मानव-कल्याण का भाव स्पष्ट है। 'ठहरो' मानवतावादी कविता है। दीन के साथ मधुर वाणी से व्यवहार करो। वह तुम्हारी सान्त्वना चाहता है, घृणा नहीं।

मकरन्द बिन्दु के अन्तर्गत प्रिय-मिलन, प्रेम-व्यथा, और ईश-

स्तुति सम्बन्धी छः छोटी-छोटी कविताएँ हैं।

आख्यानक कविताएँ लगभग सभी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक है। प्रवन्ध वहुत सूक्ष्म है जो किसी नैतिक सिद्धान्त की व्याख्या के लिए एक आधार मात्र है। 'श्रीकृष्ण-जयन्ती' में तो प्रवन्ध है ही नहीं। 'कुरुक्षेत्र' में गीता का उपदेश प्रमुख है, कृष्ण-सम्बन्धी घटनाओं का विस्तृत उल्लेख कुछ अनावश्यक सा है। शेष में एक-एक घटना का आलंबन है। 'शिल्प-सौन्दर्य' इन में उत्कृष्ट रचना है।

चित्रकूट—यह एक प्रवन्ध काव्य है जो पहले 'इन्दु' पत्रिका में 'सत्यव्रत' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसके चार भाग हैं, दूसरा भाग अतुकांत है। कथा का आधार रामायण के अयोध्या-कांड की एक घटना है। आरम्भिक भाग में कवि ने अपनी मौलिकता दिखाई है।

चित्रकूट चित्र-लिखा-सा मन्दाकिनी की तरंगों से खेल रहा था। स्फटिक शिला पर राम और सीता आसीन थे। राघव बोले देख जानकी के आनन को, "स्वर्गंगा का कमल मिला कैसे कानन को।" "नील कमल को देख, वहीं उस कंज कली ने स्वयं आगमन किया"—कहा यह जनक-लली ने। राघव ने पूछा कि तुम्हें इस भयावह वन में डर नहीं लगता! जानकी बोली—"जिसके पास इतना वड़ा धनुर्धर हो, उसे डर क्या। और 'नारी के सुख सभी साथ पति के रहते हैं।'" जानकी राम की गोद ही में सो गई। राम पुलकित थे। इतने में लक्ष्मण आए और आज्ञा पाकर बोले—एक भील ने मुझे वताया है कि भरत चतुरंग सैन्य सजाए चढ़ा आ रहा है। राम हँस दिए।

प्रभात होने वाला था। सीता स्नान करके पुष्प बीन लाई। राम नित्य कृत्य करके भोजन के लिए आ बैठे। जानकी ने लक्ष्मण

को भी बुलाया तो वह फल लाने के बहाने वृक्ष पर चढ़ गया और बोला—"धनुष मुझे दीजिए, दुष्ट भरत आता करने को कुत्सित कार्य है।" राम ने कहा—"तुम्हें भ्रम है, पेड़ पर से उतर आओ।" उसी क्षण भरत आ गए और भाई-भाई गले मिलने लगे।

राम और सीता के प्रेमालाप में कवि ने नवीनता ला दी है। कथोपकथन नाटकीय ढंग का है। कुछ एक नये उपमानों का प्रयोग हुआ है, जैसे सीता के वदन पर कचभार मानो कमल के आसपास सिवार।

भरत—हिमगिरि का रम्य शृंग रवि-रश्मियों से मणिमय हो उठा। निकट ही कश्यप ऋषि का रमणीक आश्रम था। यहीं एक वीर बालक सिंह के शिशु से खेल रहा था—'खोल, खोल मुख, सिंह-बाल'। इस वीर बालक के औद्धत्य को देख कर सिंहनी क्रोध से गरजने लगी। बालक रोष से तन कर बोला—क्रीड़ा में बाधा डालोगी तो पीट दूँगा, चली जा, भाग जा।

यह 'भरत' है जिस नाम से 'भारत' संज्ञा पड़ी इस वीर भूमि की। यह शकुन्तला और दुष्यन्त का पुत्र है।

भरत भारत के गौरव का प्रतीक है। इस नाते कविता में राष्ट्र-भावना आ गई है। कविता की प्रेरणा कालिदास के शकुन्तला नाटक से ली गई है, लेकिन प्रबन्ध-योजना और भावाभिव्यक्ति में कवि की मौलिकता देखी जा सकती है। कविता अतुकान्त है।

शिल्प सौन्दर्य का आधार एक ऐतिहासिक घटना है। (भरतपुर के जाट सरदार) सूरजमल के नेतृत्व में जाटों ने आलमगीर द्वितीय (राज्यकाल १७५४-५६) की सेनाओं को परास्त करके दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। इतना कोलाहल था कि प्रलय का पयोधि उमड़ा आ रहा हो। आलमगीर ने आर्य मन्दिर

खुदवा डाले, पर इसके साथ ही मुगल साम्राज्य की बालू की दीवार भी गिर गई। सूर्यमल्ल धूमकेतु की भाँति उदित हुए। आज उनकी समस्त प्रतिहिंसा जाग उठी। वे मोती मसजिद के प्रांगण में खड़े थे, हाथ में गदा थी और मन में रोष। गदा छज्जे पर पड़ी और संगमरमर की दीवार काँप गई—

सूर्यमल्ल रुक गए, हृदय भी रुक गया
भीषणता रुक कर, करुणा सी हो गई।

निश्चय किया कि इस शिल्प-सौन्दर्य को नष्ट नहीं किया जा सकता। धर्मान्धता ने कितने ही विज्ञान के साधन, सुन्दर ग्रन्थ और शिल्प नष्ट किये।

धर्म के नाम पर हमारे इतिहास में अनेक अत्याचार होते रहे हैं। हूणों, पठानों और मुगलों के अत्याचारों की एक अकथ कहानी है। मुगल सम्राट् आलमगीर ने कितने ही भारतीय शिल्प नष्ट कर दिये। जाट सरदार ने प्रतिशोध लेने के लिए मुगल शिल्प को नष्ट कर देना चाहा, लेकिन सौन्दर्य का प्रभाव देखिए कि उसकी क्रूरता ही जाती रही। कविता का यही संदेश है कि क्रूरता वीरता नहीं है। कलाकृति तो युग-युग की सम्पत्ति होती है। उसे नष्ट करना वीरता का उपहास करना है। यह कविता भी अतुकांत छंद में है।

कुरुक्षेत्र—कविता का आरम्भ मोहन के बाल गोपाल रूप से होता है। बाँसुरी की धुन पर गोवालों का एकत्र हो जाना, कृष्ण का गौएँ चराना, कंस का वध करना, सुभद्रा का विवाह पार्थ से करा देना, पाण्डवों का संरक्षक बन कर धर्म-राज्य की स्थापना करना, राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करना, शिशुपाल का वध करना, महाभारत के युद्ध में अर्जुन का सारथी बनना आदि प्रसंगों का उल्लेख करके कवि ने कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पहुँचे अर्जुन के दैन्य और मोह का

वर्णन किया है। तब कृष्ण ने अर्जुन को कर्म में प्रवृत्त होने का उपदेश दिया—

कर्म जो निर्दिष्ट है हो धीर करना चाहिए।
पर न फल पर कर्म के कुछ ध्यान रखना चाहिए॥
उठ खड़े हो अग्रसर हो कर्मपथ से मत टरो।
क्षत्रियोचित धर्म जो है युद्ध निर्भय हो करो।

कविता में कृष्ण और कृष्ण के 'कर्मवाद' का रूप स्पष्ट किया गया है।

वीर बालक—पंजाब के इतिहास से एक घटना ले कर कवि ने बहुत सुन्दर और प्रभावपूर्ण कविता की रचना की है। इसमें गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्रों का महाबलिदान वर्णित किया गया है। सरहिन्द के दुर्ग में जोरावरसिंह और फतेहसिंह खड़े हैं। सूबा (मुगल गवर्नर) ने कर्कश स्वर में कहा—"अभी समय है, सोच लो; एक ओर इस्लाम है, दूसरी ओर मृत्यु।" यह सुनते ही जोरावरसिंह का वदन स्वर्गीय शान्ति की ज्योति से आलोकित हो उठा और उसकी धमनियों में पैतृक रक्त जोर मारने लगा। बोला—मुझे व्यर्थ समझा रहे हो। वाहिगुरु (भगवान्) की इच्छा पूर्ण होने दो। फतेहसिंह ने भी ऐसा ही कहा। दोनों आकण्ठ दीवार में चुने जा रहे थे। सूबा ने एक बार फिर कहा कि अब भी समय है। कुँवर बोला—"अन्तिम समय में प्रभु-स्मरण में विघ्न मत डालो। प्रभु की इच्छा पूर्ण हो।"...तत्काल छा गई शान्ति, भयानक शान्ति! !!

धार्मिक असहिष्णुता की परिचायक यह कविता अतुकान्त है। इसकी भाषा ओजपूर्ण और परिष्कृत है। भावसृष्टि सफल है।

'कानन-कुसुम' की कविताओं में हमें प्रसाद-काव्य के अनेक विकास-चिह्न मिलते हैं। यह उनके संक्रमण-काल की रचना है।

कई विषय पुराने हैं, कुछ नये भी हैं। इतिवृत्तात्मक कविताएँ तो हैं ही, लेकिन स्वच्छंदतावादी और भावात्मक कविताओं का अभाव नहीं है। मानसिक स्थितियों के चित्रण में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। अनेक कविताओं में करुणा और वेदना का चित्रण उल्लेखनीय है। प्रकृति के माध्यम से भी मानवीय भावनाओं की व्याख्या की गई है। प्रेम का एक स्वस्थ और सात्विक रूप निखर रहा है। जीवन-दर्शन के संकेत भी यत्र-तत्र मिलने लगे हैं। अधिकतर कविताएँ प्राचीन शैली की हैं। इनमें छंद की गति मंद है, भाषा शिथिल है, तुकबंदी अधिक है, अलंकार भरपूर हैं। पर कुछ कविताएँ भाव और भाषा की दृष्टि से सुंदर बन पाई हैं। भाषा और छंद के नवीन प्रयोग भी सफल हैं। कहीं-कहीं भाषा त्रुटिपूर्ण है पर उसमें विकास के कई गुण पाये जाते हैं। लगता है कि कवि को एक निश्चित मार्ग मिल गया है। प्रभो, करुणा-कुंज, महाक्रीड़ा, रमणी-हृदय, धर्मनीति, मर्मकथा, प्रथम प्रभात, हृदयवेदना और शिल्प-सौन्दर्य इस संग्रह की उत्कृष्ट कविताएँ हैं। सामान्य रूप से 'चित्राधार' की अपेक्षा कानन-कुसुम की भावना पवित्र है, इसके बाद वह और भी पवित्र और परिष्कृत होती गई है। 'कानन-कुसुम' के कवि ही के शब्दों में—

> दृश्य सुंदर हो गये मन मे अपूर्व विकास था।
> आंतरिक औ' बाह्य सब मे नव-वसन्त विलास था॥

---

३. झरना और लहर

झरना

'झरना' के प्रकाशन से छायावादी युग का प्रारम्भ माना जाता हैं। इसके प्रकाशक का वक्तव्य है—"जिस शैली की कविता को हिन्दी में आज दिन छायावाद का नाम मिल रहा है, उसका प्रारंभ प्रस्तुत संग्रह द्वारा ही हुआ था। इस दृष्टि से यह संग्रह अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी प्रसाद को 'झरना' के प्रकाशन के समय से कवि मानते हैं। इसके पहले के प्रसाद उनकी राय में कुछ नहीं थे। बात यह है कि 'कानन-कुसुम' पहले 'चित्राधार' का ही एक खंड था। बाद में जब 'चित्राधार' में केवल ब्रजभाषा की ही कविताएँ रहने दी गईं, तो 'कानन-कुसुम' अलग से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। पहले इसमें अत्यन्त साधारण कविताएँ थीं, बाद में प्रसाद जी ने इसमें और कविताएँ जोड़ीं। कुछ कविताएँ 'झरना' की 'कानन-कुसुम' में चली गईं और कुछ 'कानन कुसुम' की 'झरना' में आ गईं। इस हेरा-फेरी के कारण संग्रहों का रूप अनिश्चित रहा। इनका जो अन्तिम रूप बना, अर्थात् जिस रूप में ये संग्रह आज प्राप्त हैं, इन्हें देखकर यह

कहना ठीक नहीं है कि 'झरना' से पहले प्रसाद के काव्य में छायावादी प्रवृत्ति नहीं है। जैसा कि पिछले प्रकरण में बताया गया है, 'कानन कुसुम' की अनेक कविताओं में छायावदी-रहस्यवादी लक्षण पाये जाते हैं।

'झरना' के प्रथम संस्करण, १६१८, में २५ कविताएँ थी। नौ वर्ष बाद ३० कविताएँ और जोड़ कर इसे वर्तमान रूप दिया गया। अतः इस संग्रह में सन् १६१४ से १६१८ तक की कविताएँ तो हैं ही, साथ ही १६१८-१६२७ ई० तक की प्रौढ़ और परिपक्व कविताएँ भी हैं। यही कारण है कि इनमें सामंजस्य का अभाव और स्तर का वैविध्य है। कुछ रचनाएँ उच्चकोटि की हैं कुछ अति साधारण। 'वेदने ठहरो', 'उपेक्षा करना', विन्दु के अन्तर्गत 'रे मन' आदि कतिपय कविताओं में तुकवंदी के सिवाय कोई विशेष काव्यगुण नहीं हैं। कुछ कविताओ में 'आँसू' और 'कामायनी' का सा भाव-गाम्भीर्य और कला-सौष्ठव मिलता है।

'झरना' नाम से ऐसा लगता है कि इस संग्रह में प्रकृति-संबंधी कविताएँ अधिक होंगी, किन्तु ऐसी कविताएँ ४-५ ही हैं। अधिकतर कविताओं में प्रेम की प्रधानता है। अलवत्तः भूमिका के रूप में प्रकृति उनमें भी चित्रित हुई है। 'झरना' प्रसाद के यौवन-काल की रचना है। झरना वास्तव में यौवन का प्रतीक है जो अपनी उच्छृंखल मस्त चाल से वहता चला जा रहा है। लेकिन उसकी यह उच्छृंखलता, यह प्रवाहगति, आगे वढ़ने पर वैसी वनी नहीं रह जाती। इसी प्रकार कवि के यौवन का आवेश धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। लगता है कि 'कानन कुसुम' का उल्लसित प्रेमी अव निराशा, वेदना और विषण्णता से घिर रहा है।

रे मन!

न कर तू कभी दूर का प्यार! (विन्दु)

भरा जी तुमको पाकर भी न
हो गया छिछले जल का मीन। (असंतोष)

परिस्थितियों के झंझावात में पड़ कर वह विक्षुब्ध हो उठा है—

जीवन नाव अँधेरे अंधड में चली। (दर्शन)

अब वे सुखमय दिन नहीं रहे न वे विलासमय संध्याएँ—

धूसर संध्या चली आ रही थी अधिकार जमाने को। (दीप)

जीवन की निश्चिन्तता रह नहीं गई।

शिथिल पड़ी प्रत्यंचा किसकी
धनुष भंग सब छिन्न जाल है।
वंशी नीरव पडी धूल में
वीणा का भी बुरा हाल है॥
(विषाद)

कवि अधिक चिन्तनशील होता जा रहा है। उसके लिए झरना एक जलप्रपात-मात्र नही रह गया। उससे उसे कुछ समाधानात्मक, कुछ आध्यात्मिक, संकेत मिलता है—'बात कुछ छिपी हुई है गहरी।' झरना कितना सुंदर है, पर उसके सौंदर्य का रहस्य तो यही है ना कि वह संतप्त जीवन को शीतल कर देता है। जब हृदय से प्रेम का झरना फूटता है तो तापमय जीवन शीतल हो जाता है। ऐसी अनेक चिन्तनाओं के बीच में से प्रसाद के व्यक्तित्व में नया मोड़ आ रहा है। कभी आशा और विश्वास और कभी घोर निराशा उसके अन्तर् पर छा जाती है। इसी लिए 'झरना' की कविताओं मे मनःस्थितियों और भाव-भूमिकाओं की विविधता है और इसी लिए कवि के ध्येय की अनिश्चितता भी खटकती है। पर यह परिस्थिति कल्याणकारिणी सिद्ध हुई है, वरना प्रसाद-काव्य का वह झरना क्योंकर प्रस्फुटित होता जो आज भी अपनी शीतल धारा से हिन्दी जगत् को परितृप्त करता हुआ बह रहा है।

'झरना' की कविताओं में अव्यवस्थित, विषाद, रूप, किरण, और बिखरा हुआ प्रेम श्रेष्ठ हैं। कुछ कविताएँ अत्यन्त साधारण हैं। ४८ कविताओं में से लगभग ३६ में शृंगार है। 'कानन कुसुम' की दो कविताएँ—प्रथम प्रभात और प्रियतम—इस संग्रह में भी हैं। इनमें प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं की व्यक्तिगत अनुभूति है जब कि युवक हृदय में प्रेम की चाह उत्पन्न हुई। 'चिह्न' शीर्षक कविता में इस यौवन का उन्माद चिह्नित है। यौवन का नव-वसन्त था।

तपती थी मध्याह्न किरण सी प्राणों की गति लोम विलोम

जीवन में उल्लास था।

हृदय एक निःश्वास फेंक कर खोज रहा था प्रेम निकेत।

प्रेमी को प्रेम-निकेत मिला जान पड़ा। 'मिलन', 'दर्शन' और 'झील में' में इस स्थिति का सांकेतिक वर्णन हुआ है। उल्लास में कवि गा उठता है—

मिलन—इस हमारे और प्रिय के मिलन से
स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा।

जैसे मधुप माधवी से, ऐसे ही प्राण अपने प्राणाधार से मिल रहे हैं। हृदयाब्धि में तुंग तरल तरंगें उठ रही हैं। ऐसे में प्रकृति भी कितनी सुंदर लगती है।

शीतकर शतशत उदय होने लगे।
तारिकाये नील नभ में आज ये,
फूल की झालर बनी हैं शोभती।
" चन्द्र-कर पीयूष वर्षा कर रहा।

आज सृष्टि में आलोक भरा है। हृदय-वीणा बज रही है।

दर्शन—निर्मल जल पर सुधा-भरी चंद्रिका हँस रही थी। मेरी नाव विह्वल पड़ी। नीरव व्योम में वंशी की स्वर-लहरी गूँज उठी। किसी के मुख की छवि ने नाव को आकृष्ट किया।

नौका मेरी द्विगुणित गति से चल पडी।
किन्तु किसी के मुख की छवि किरनें घनी—
रजत रज्जु सी लिपटी नौका से वहीं
बीच नदी में नाव किनारे लग गई।
उस मोहन मुख का दर्शन होने लगा।

झील में—झील में झाईं पडती थी,
चन्द्रमा नभ में हँसता था;
और मुग्ध हो प्रकृति स्तब्ध थी शान्त।

ऐसे में हम थे और वे थे। वृत्तियाँ रह न सकीं फिर दान्त—हमने उनका हाथ अपने हाथ में ले लिया। यह देख झील, झाईं, नभ, शशि, तारा सब अशान्त हो उठे।

प्रसाद का रूप-वर्णन प्रसिद्ध है। 'रूप' और 'प्रार्थना' में प्रिय की छवि का सुंदर चित्रण है—

रूप अतुकांत कविता है जिस में नखशिख शैली का वर्णन है। बंकिम भ्रू,

कुटिल कुन्तल, नील नलिन से नेत्र,
सुन्दर गोल कपोल, सुढर नासा बनी।
चपल ग्रीवा, मुक्तागण हैं लिपटे कोमल कम्बु मे,
चंचल चितवन, अंग-अंग में स्वच्छता।
सिंचे हुए वे सुमन सुरभि मकरन्द से,

प्रार्थना—वह तुम्हारा अरुण यौवन, तुम्हारी मत्त सुषमा
जिसे देख कर एक ही बार, हो गये हम भी हैं अनुरक्त
युग युग तक बनी रहे जिससे हम जीवनमुक्त हों।

किन्तु प्रेमी जीवनमुक्त न हो सका। उसकी सौंदर्योपासना सफल न हो सकी, उसके प्रेम की उपेक्षा हुई। प्रिय की उपेक्षा की शिकायत कवि ने अनेक कविताओं में की है—

उपेक्षा करना—किसी पर मरना यही तो सुख है,
उपेक्षा करना, चपल यह चाल तुम्हारी।
दीप पर मरने वाले पतंग की जो दशा है, वही है दशा हमारी।
हमें जलने दो। तुम तमाशा देखो।

स्वप्नलोक—तुम्हारे आने की उत्कंठा से
हृदय हमारा फूल रहा था कुसुम-सा।
तुम्हारे स्वागत में कलियों की माला तैयार की। देखा कि तुम पवन सहारे दिव्यलोक से उतर रहे हो। मै व्याकुल हो उठा कि तुमको अंक में ले लूँ, पर सपना ही टूट गया।

आशालता—तुम्हारी करुणा से मेरी स्नेहलता बढ़ चली। पर एक दिन तुम्हारी करुणा ऊब गई। इस आशालता को 'सींच कर क्या फल पाया?' फल की बात ही क्या, 'फूल भी हाथ न आया।'

अतिथि— हृदय-गुफा थी शून्य
रहा घर सूना
अतिथि आ गया एक
न मैं ने जाना
मन को मिला विनोद
यही था प्रेम तभी पहचाना
लेकिन तरह-तरह के लगा खेलने खेल
वह निकला नाहर।

धूल के फूल—खेल-कूद के दिन थे। जीवन का उल्लास था।
न था उद्देश्य, न था परिणाम।
तुमने प्रलोभन देकर अंक में लिया और बाद में सहसा गिरा दिया। बस, वह उल्लास समाप्त हो गया। अब उस खेल में आनन्द कहाँ रह गया!

प्रेमी अपने मन को कुछ दिन ढाढ़स देता है। सोचता है कि

मेरे प्रेम में असर होगा तो वह अवश्य खिचा चला आयगा। वह सुखद प्रतीक्षा में जीवन को ढकेले चलता है और कभी-कभी आशा से भरकर गा भी उठता है।

कब ?—

शून्य हृदय में प्रेम-जलद-माला कब फिर घिर आवेगी ?

यह कली जो मधु से रिक्त हो रही है, कब खिलेगी ? मनमयूर कब नाचेगा ? मेरे मन की सूखी सिकता को आर्द्र करने, मेरी कामनाओं को तृप्त करने, कब तक तुम्हारे प्रेम की सरिता आवेगी ?

कहो—प्रियतम, क्या बात है कि आज छंद व्याकुल हैं, वीणा मूक है, कंठ गद्गद है।

ऊँचे चढ़े हुए वीणा के तार मधुप से गूँज रहे

...जीवनधन ! यह आज हुआ क्या बतलाओ, मत मौन रहो

बाह्य वियोग, मिलन या मन का, इसका कारण कौन कहो ?

प्यास—हृदय की दारुण ज्वाला से प्यास बढ़ चली है ! जब से रस-भरी आँखों को देखा है मेरी आँखें प्यासी हैं। उसने राग-रञ्जित पेय (प्रेम) का प्याला दिया था जिस से चित्त स्थिर हुआ।

चाहता पीना मैं प्रियतम, नशा जिसका उतरे ही नहीं।

लेकिन जीवन-धन चुप रहे, बस मुसक्या दिये।

पाईं बाग—वृक्षों के पत्ते सूख कर गिर गये, अब वे कोमल किसलय और सुरभित पवन की अभिलाषा में हैं। मेरी आशा थी, तुम गले मिलोगे और यह उजड़ी क्यारी विकसेगी।

अपना पाईं बाग बना लो, इस मन को आकर।

प्रत्याशा— मन्द पवन बह रहा अँधेरी रात है

आज अकेले निर्जन गृह में क्लान्त हो

मैं तारे गिनगिन कर घड़ियाँ काट रहा हूँ। आओ, मेरी परीक्षा न करो।

हृदय हमारा नहीं हिलाने योग्य है।
मत छलकाओ इसे प्रेम-परिपूर्ण है।

सुधासिंचन— तुम्हारा शीतल सुख परिरम्भ
मिल जाय तो हृदय-क्षत मलयज से खिल जाय
और सुधा से सींचो जाय मही।

कसौटी— शुद्ध सुवर्ण हृदय है प्रियतम
इसे तुम विरहाग्नि में तपाकर तिरस्कार और अविश्वास की कसौटी पर कस चुके।

खरी वस्तु है, कहीं न इसमें
बाल बराबर भी बल है।

वसन्त की प्रतीक्षा—मैंने बड़े परिश्रम से क्यारी बनाई है, उसे दृग्जल से सींचा है, काँटों की परवाह नहीं की और प्रतीक्षा करता रहा कि मेरे जीवन का वसन्त आवेगा।

कभी तो होगा इस मे फूल
नई कोपल में से कोकिल
कभी किलकारेगा सानन्द।

जब कि तुम—

एक क्षण बैठ हमारे पास
पिला दोगे मदिरा मकरन्द।

खोलो द्वार—मै दुःख की घुटन से व्याकुल हो रहा हूँ। प्रिय, द्वार खोलो जिससे मेरा भी सुप्रभात हो।

अब भी छोड़ नहीं सकता हूँ, पाकर प्राप्य तुम्हारा द्वार।

प्रतीक्षा फलवती नहीं हो रही। विरह-दुःख तीव्र होता जा रहा है।

सुधा में गरल—सुधा में मिला दिया क्यों गरल
सुना था तुम हो सुन्दर, सरल।

तुम्हारे संयोग से मेरे मन की 'कुमुदिनी मुकुलित हो कुछ खिली' थी कि तुम्हारे वियोग से 'अस्त हो गई कौमुदी—राह में ही।'

वालू की वेला—स्नेहहीन प्रियतम, मैंने तुम्हारे प्रेम की राह में बहुत दुःख झेले हैं। अब तो संयोग का मधुर गीत गाने देते ! मिलो

गलवाही दे हाथ बढ़ाओ

निठुर इन्हीं चरणों में रत्नाकर हृदय उलीच रहा

पुलकित, प्लावित रहो, बनो मत सूखी वालू की वेला।

निवेदन—तेरे प्रेम-हलाहल से मर कर भी विरह-सुधा से जीते हैं। मेरे मरुमय जीवन को, हे सुधास्रोत, हरा-भरा कर दो।

लेकिन निर्मोही प्रिय न अनुनय मानता है, न ही आत्मसमर्पण से द्रवित होता दिखाई देता है।

अर्चना—वीणे ! ऐसा मधुर स्वर छेड़ो कि

लौट चला आवे प्रियतम इस भवन में।

हृदय में बड़ी-बड़ी अभिलाषायें थीं, पर संकोचवश वे दबी पड़ी रह गईं। स्निग्ध कामना पूरी नहीं हुई। मन-मन्दिर में येह अर्चना अब भी है। प्रिय, मेरे अश्रु भी तुम्हें द्रवित न कर सके। इतने निर्दय न बनो।

अनुनय—यही अभिलाषा है कि मन तुम्हारी स्मृति में मस्त रहे और आँसुओं से शीतल होता रहे। अहो प्राण प्यारे,

क्रोध से, विषाद से, दया या पूर्व प्रीति ही से

किसी भी वहाने से तो याद किया कीजिये।

पी कहाँ—मैं प्राण-धन को पुकार रहा था—हो कहाँ आ मिलो हो जहाँ।

जलमयी हो रही है धरा

कंठ फिर भी न होता हरा।

उधर से पपीहा बोल उठा—पी कहाँ, पी कहाँ!

असन्तोष— प्रकृति है सुंदर परम उदार
नर-हृदय परिमित पूरित-स्वार्थ

इसलिए प्रकृति में फैली हुई विश्व-गरिमा प्रणय-निराशा में लघिमा लगने लगती है।

तुम्हारा मुक्तामय उपहार
हो रहा अश्रुकणों का हार।
न हो जब मुझ में ही सन्तोष
तुम्हारा इसमें क्या है दोष।

बिखरा हुआ प्रेम—जीवन के

अरुणोदय मे चंचल होकर, व्याकुल होकर विकल प्रेम से मैंने आनन्द को टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया। किन्तु नील निशा के शून्य गगन में आशा-तारा बन कर वह फिर आया। मैंने सोचा व्यर्थ ही मेरा प्रेम बिखर गया। अब बूँद-बूँद सींचने से संपूर्ण अणु कैसे भीग सकते हैं! इनको प्लावित करने के लिए प्रेम-सुधाकर चाहिये।

'झरना' की प्रेम-कविताओं में निराशा अधिक है। स्मृति से सुख नहीं होता, दुःख होता है। मिलन का स्वप्न देखते-देखते प्रेमी के मन में विषाद भर गया है। अब प्रियतम नहीं मिलने का! वेदना तीव्र होती जा रही है।

'विषाद' शीर्षक कविता में प्रेमी के हृदय की इस स्थिति का कवित्वपूर्ण वर्णन हुआ है। कोई विपन्न जंगली गोधूली के मलिनांचल में पड़ा है। स्मृति के आते ही उसके अन्तराल से आँसू के बादल उठने लगते है।

शिथिल पड़ी प्रत्यंचा किसकी,
धनुष भग्न सब छिन्न जाल है।

वंशी नीरव पड़ी धूल में
वीणा का भी बुरा हाल है।
किसके तममय अन्तराल में
झिल्ली की झनकार हो रही।
...विषयशून्य किसकी चितवन है
ठहरी पलक अलस में आलस।

उसके रोम-रोम में विषाद व्याप्त है।

स्वभाव—मेरा हृदय-जलद तुमने सब प्रेम-जल निकालकर शून्य कर दिया।

मरु-धरणी सम तुमने सब शोषित किया।
...मेरी जीवन-मरण समस्या हो गई।

मैं तो छिपाना चाहता था, पर तुम्हारा स्वभाव प्रगट ही हो गया।

हृदय की वेदना 'होली की रात' में बड़ी मार्मिकता से भड़क उठी है। आज प्रकृति में होली है—चाँदनी रात, सौरभ का गुलाल, कोकिल का गान, चन्द्रमा की सिताबी, ताराओं की हीरक-पन्नियाँ, मधुपों के फगुआ। विश्व में ऐसा शीतल खेल !
लेकिन मेरे हृदय में जलन रहे, क्या बात !
ठीक ही तो है, होली की रात को जलन भी तो होती है।

'वेदने ठहरो' में विरह-वेदना से व्याकुल हो कर प्रेमी अपने जीवन का अन्त करने की सोचता है।

सुखद थी पीड़ा न मुझको दुख था।

लेकिन मिलन के स्वप्न ने अवसन्न कर दिया।

प्राण है केवल मेरा अस्त्र।

वेदने ठहरो ! नहीं तो वही अस्त्र छोड़ दूँगा।

'अव्यस्थित' में बताया गया है कि ऐसी स्थिति में कवि का मन न ईश्वर में लगता है न प्रकृति में। उसे कहीं शान्ति नहीं मिलती।

विश्व के नीरव कानन में
जब करता हूँ वेकल, चंचल
मानस को कुछ शान्त
तभी कुछ ऐसी हलचल होती है कि वह भ्रान्त हो जाता है।
कुसुमों, वल्लरियों और भौरों को देख विकलता बढ़ जाती है।
जब करता हूँ कभी प्रार्थना,
कर संकलित विचार,
तभी कामना के नूपुर की,
हो जाती झनकार।
इन कविताओं में अनुभूति की गहराई अधिक बढ़ गई है।

प्रकृति अनेक प्रेम-कविताओं की भूमिका में वर्णित हुई है—कभी सामंजस्य में और कभी विरोध में। विशुद्ध प्रकृति-वर्णन दो बूँदें, पावस प्रभात, वसन्त और किरण में हुआ है।—

दो बूँदें—सुधा की दो बूँदें हैं—एक चाँद में, दूसरी मकरन्द में। एक से धरती और आकाश सिंचित हैं, प्रकृति पुलकित है; और दूसरी पर मधुप गुंजार करता फिरता है।

पावस प्रभात—श्रावण की राका रजनी में अभी बादल थे, अभी टुकड़े भटकते फिरते हैं। कातर अलस पपीहा की ध्वनि किसी की खोज में निकली है। तारे टिमटिमा रहे हैं। लो चन्द्रमा ढल चला।
रजनी के रञ्जक उपकरण बिखर गये।
घूँघट खोल उषा ने झाँका, और फिर—
अरुण उपांगों से देखा, कुछ हँस पड़ी।
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी॥

वसन्त—वसन्त और प्रणय का आना-जाना एक-सा होता है। वे आते हैं तो मलयज, पपीहा, पिक, रसाल और डाल-डाल का

आह्लाद बढ़ जाता है। और जब जाते हैं तो पतझड़ रह जाता है।

'किरण' इस संग्रह की सर्वोत्तम प्रकृति-कविता है। किरण प्रेम और आनन्द का सन्देश लाती है।

नव-वधू सी, कोकनद मधुमास सी तरल।
..."स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन,
मिलाती हो उससे भूलोक।
..."अरुण शिशु की घुँघराली लट
.." किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती-सी तुम कौन?

इस कविता में कल्पना की प्रौढ़ता, उपमाओं की सुन्दरता, भावना की सरसता और भाषा की प्रवाहमयता दर्शनीय है।

'दीप' में वस्तु-वर्णन और *'देवबाला'* में रूप-वर्णन बहुत सुन्दर है।

धूसर संध्या चली आ रही थी अधिकार जमाने को।

अंधकार बढ़ रहा था।

गिरि-संकट में जीवन-सोता मन मारे चुप बैठा था।

तब एक छोटा सा दीया जला। अनुरक्त बीचियाँ सुनहरी प्रभा में नाच उठीं, सुप्त राग गान करने लगे और दीप अपना प्रकाश अखिल विश्व पर डालने लगा।

इस कविता का प्रतीकात्मक अर्थ भी लिया जा सकता है। वास्तव में प्रकृति-संबंधी सभी कविताओं में आशा का स्वर स्पष्ट सुनाई देता है। वही स्वर मधुपों की गुंजार में, पावस में बादलों के छट जाने पर प्रभात के उदय में, वसन्त के आगमन अथवा किरण में निहित है। दीप उसी आशा का प्रतीक है।

'झरना' की शेष कविताएँ इतिवृत्तात्मक, उपदेशपूर्ण और साधारण हैं—

रत्न—मुझे एक अनगढ़, अपनी स्वाभाविकता में छिपा, रत्न मिल गया।

मूल्य था मुझे नहीं मालूम,
किन्तु मन लेता उसको चूम।

अरे लोभी मन, इसे पहन कर तो देख लेते!

हृदय का सौन्दर्य—

सृष्टि में सब कुछ है अभिराम
एक से एक मनोहर दृश्य

पर शांत, करुण हृदय का सौन्दर्य चन्द्रिका से भी अधिक उज्ज्वल और मल्लिका से भी अधिक रम्य है।

कुछ नहीं—जिनके पास हम समझते हैं कुछ भी नहीं, उसके पास सब कुछ है, क्योंकि उसको आवश्यकता ही नहीं।

'तुम' और 'आदेश' मानवतावादी कविताएँ हैं। इनमें कवि की विश्व-कल्याण की चिन्ता ओतप्रोत है—

तुम—आत्मा के बारे में कहा है—

परम प्रकाश हो, स्वयं ही पूर्णकाम हो
खेद भय रहित अभेद अभिराम हो।

रोम-रोम में रम रहे हो, प्रकृति में सर्वत्र व्याप्त हो। बंधन में बँधकर उसे फिर तोड़ देते हो। दीन, दुःखी, श्रमी, भूले-भटके सब के साथ सहानुभूति, सब की सेवा, करते चलो—यही आत्मा का आत्मा के साथ सम्बन्ध है।

आदेश—तेरे शुद्ध मानस पर पावन अक्षरों में आत्मा का यह सन्देश लिखा है—स्वार्थ भूल जा, द्वन्द्व छोड़, प्रार्थना और भक्ति के पहर दुःखियों पर दया करने में लगा दे।

उपर्युक्त भावों के रहते भी यदि कोई प्रसाद को पलायनवादी कहे तो उसे क्या कहा जाय? प्रसाद अपने व्यक्तिगत विषाद में जन-

कल्याण को नहीं भूले, यही उनकी प्रगतिवादिता का प्रमाण है।

भाव, भाषा और कला की दृष्टि से 'झरना' की कविताओं में पहले से अधिक प्रौढ़ता है। इनमें छायावाद के विविध लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। छायावादी कवि बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक सौन्दर्य की ओर विशेषतः आकृष्ट होता है; शृङ्गार अथवा प्रेम के क्षेत्र में लौकिकता से आध्यात्मिकता की ओर उठता है—नई जिज्ञासा, नई आकुलता, नई चाह ले कर; उसके उद्गारों में मृदुलता, उदारता, और करुणा होती है—उसकी वेदना में भी हाहाकार नहीं होता; प्रकृति के साथ उसका तादात्म्य हो जाता है, और वह अपने अन्तर की अधिकांश अभिव्यक्तियों का माध्यम प्रकृति को बना लेता है; जीवन के प्रति उसका एक स्वस्थ, बौद्धिक और समन्वयात्मक दृष्टिकोण होता है। इन सभी विशेषताओं को 'झरना' में देखा जा सकता है। आगे चलकर 'लहर', 'आँसू' और 'कामायनी' में भावाभिव्यक्ति का यह स्तर ऊँचा हो गया है।

'झरना' में कई तरह की कविताएँ हैं—गेय, अगेय, तुकांत, अतुकांत; इतिवृत्तात्मक, कवित्वपूर्ण; कुछ 'कानन-कुसुम' की कविताओं से भी अधिक हीन और कुछ 'लहर' के गीतों से भी अधिक सुन्दर; कुछ भाषा और कला की दृष्टि से अति दोषपूर्ण, कुछ अत्यन्त परिष्कृत और प्रौढ़। लेकिन अधिकतर ललित, प्रवाहमय और कलात्मक हैं। 'झरना' के कुछ गीतों की भाषा शिथिल है, लय का भी अभाव है, लेकिन कुछ ऐसे गीत भी हैं जिनकी संगीतात्मकता असंदिग्ध है। कुछ-एक में भावनाएँ अब भी विह्वल रही हैं, लेकिन इनमें सुन्दर कल्पना, सरस और गम्भीर भावना और प्रवाहमय गति, विविध छंदों का उपयुक्त चयन इत्यादि गुण देखे जा सकते हैं। सूक्ष्म भावों के प्रकाशन में कवि को विशेष सफलता मिली है।

बन गई है। वह अपने गत यौवन के लिए बार-बार ललचा उठता है—आह रे वह अधीर यौवन !

मेरी जीवन-स्मृति के जिसमें—
खिल उठते वे रूप मधुर थे।

कवि यौवन को पकड़ रखना चाहता है, पर वह तो जा रहा है; पल भर भी नहीं रुकेगा !

जब भी कवि को एकान्त मिलता है। तभी—

झंकृत हो जाते हैं उन स्मृति किरणों के टूटे तार—
सूने नभ में स्वर तरंग का फैला कर मधु पारावार।

प्रसाद जी ने 'लहर' में १०-११ स्मृति-कविताएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें स्मृति के अनेक पक्ष अंकित हैं। अतीत का स्मरण करके सुख भी होता है और दुःख भी। सुख इसलिए कि वे क्षण सुख के थे—'वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे।' वे प्रेम के दिन थे सरस और सानन्द। उन दिनों की याद करके एक स्फूर्ति मिलती है; मन उसी यौवन के उल्लास से भर जाता है। फिर कल्पना में प्रिय की मूर्त्ति भी तो सामने आ जाती है। तीन-चार कविताओं में इसी तरह की सुख-स्मृतियाँ हैं—

उस दिन जब जीवन के पथ में—कवि को वे दिन याद आते हैं जब उस अकिंचिन का अतृप्त हृदय (टूटा फूटा पात्र) प्रेम से भर गया था। सारा संसार मधुमय था।

छिन्न पात्र मे था भर आता—
वह रस बरबस था न समाता।
स्वयं चकित-सा समझ न पाता
कहाँ छिपा था, ऐसा मधुवन ॥

तुम्हारी आँखों का बचपन—शुद्ध पवित्र और मधुर स्नेह से सना हुआ प्रिय का रूप कभी भुलाया नहीं जा सकता—वह अल्हड़पन,

की भावना 'लहर' की कुछ कविताओं में भी स्वभावतः आ गई है। लहर जीवनानंद की प्रतीक है। एक समय था जब जीवन में उल्लास आया था, आनन्द की लहर उठी थी; पर तट से टकरा कर लहर लौट गई। जीवन-तट सूखा रह गया। अलबत्तः सिकता पर उसकी रेखाएँ अब भी शेष हैं। परन्तु वह लहर तो बार-बार आती है।

उठ-उठ गिर-गिर फिर फिर आती
वर्तित पद चिह्न बना जाती
सिकता की रेखायें उभार—
भर जाती अपनी तरल सिहर।

कवि उस लहर को लौटने के लिए कह रहा है—

ओ प्यार पुलक से भरी ढुलक!
आ चूम पुलिन के विरस अधर!

निश्चय ही लगता है कि वह लहर कवि के जीवन-पुलिन के विरस अधरों को चूमने आई। विषाद दूर हो गया। इस पर भी अतीत को बिलकुल तो नहीं भुलाया जा सकता। एक बार जीवन में जो घटनाएँ घटित होती हैं, वे अन्तस्तल पर अमिट गहरी रेखाएँ छोड़ जाती हैं। कवि उन्हीं स्मृतियों को सम्बल मान कर उन्हीं के सहारे अपना जीवन बिता रहा है।

उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पन्था की।

कवि को वे दिन याद आते हैं जब उसके छिद्र पात्र (भग्न हृदय) में किसी ने प्रेम की भिक्षा डाल दी थी;

खेलता था जब अल्हड़ खेल
अजिर के उर में भरा कुलेल
हारता था, हँस हँस कर मन
आह रे, वह व्यतीत जीवन!

यौवनकाल के मदमाते दिनों की स्मृति तो उसके जीवन का अंग

बन गई है। वह अपने गत यौवन के लिए बार-बार ललचा उठता है—आह रे वह अधीर यौवन !

मेरी जीवन-स्मृति के जिसमें—
खिल उठते वे रूप मधुर थे।

कवि यौवन को पकड़ रखना चाहता है, पर वह तो जा रहा है; पल भर भी नहीं रुकेगा !

जब भी कवि को एकान्त मिलता है। तभी—

झंकृत हो जाते हैं उन स्मृति किरणों के टूटे तार—
सूने नभ में स्वर तरंग का फैला कर मधु पारावार।

प्रसाद जी ने 'लहर' में १०-११ स्मृति-कविताएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें स्मृति के अनेक पक्ष अंकित है। अतीत का स्मरण करके सुख भी होता है और दुःख भी। सुख इसलिए कि वे क्षण सुख के थे—'वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे।' वे प्रेम के दिन थे सरस और सानन्द। उन दिनों की याद करके एक स्फूर्ति मिलती है; मन उसी यौवन के उल्लास से भर जाता है। फिर कल्पना में प्रिय की मूर्त्ति भी तो सामने आ जाती है। तीन-चार कविताओं में इसी तरह की सुख-स्मृतियाँ हैं—

उस दिन जब जीवन के पथ में—कवि को वे दिन याद आते हैं जब उस अकिंचिन का अतृप्त हृदय (टूटा फूटा पात्र) प्रेम से भर गया था। सारा संसार मधुमय था।

छिन्न पात्र मे था भर आता—
वह रस बरबस था न समाता।
स्वयं चकित-सा समझ न पाता
कहाँ छिपा था, ऐसा मधुवन ॥

तुम्हारी आँखों का बचपन—शुद्ध पवित्र और मधुर स्नेह से सना हुआ प्रिय का रूप कभी भुलाया नहीं जा सकता—वह अल्हड़पन,

वह हास, अब कहाँ है ? तब तो सरस वसन्त था, दिगन्त मधुर किलकारियों से गूँजता था, सुकुमार जीवन रस में तिरता था।

खेलता था जब अल्हड खेल।
अजिर के उर में भरा कुलेल॥
हारता था हँस हँस कर मन।
आह रे वह व्यतीत जीवन॥

वह सरलता, वह आत्मीयता, क्या आज भी है ?

आज भी है क्या मेरा धन।
तुम्हारी आँखों का बचपन॥

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे—कवि को मिलन के उन सुन्दर दिनों की याद आती है 'जब सावन-घन सघन बरसते, इन आँखों की छाया भर थे।' मालती का सौरभ, मधुप की गुंजार, नदी-कूल, पपीहा की रट, सब हमारे यौवन में रस से भरे थे। बिजली मेघ-पट पर ऐसे चित्र खीचती थी कि 'मेरी जीवन-स्मृति के जिसमें, खिल उठते वे रूप मधुर थे।'

प्रसाद का व्यक्तिगत जीवन ऐसा रहा है कि अतीत की स्मृति से उसे प्रायः व्यथा ही होती है। उसका प्रेम अतृप्त रहा है। प्रियतम उसके रिक्त हृदय मे प्रेमरस उँडेल कर न जाने कहाँ चला गया। चार गीतों में उस निष्ठुर की दुःखद स्मृति अंकित हुई है—

मधुर माधवी संध्या में—संध्या मे जब रागारुण रवि अस्त हो रहा है, जब समीर कोमल दलों को छेड़ता चलता है, जब कोकिल की कूक वायु-मंडल में गूँजने लगती है, तब तुम क्यों उदास हो जाते हो ?

वञ्चित रे ! यह किस अतीत की विकल कल्पना का परिणाम ? प्रणय-स्मृति के तार तो झंकृत नहीं हो गये ना !

नक्षत्रों से जब प्रकाश की रश्मि खेलने आती है,
तब कमलो की सी तब सन्ध्या क्यों उदास हो जाती है ?

प्रकृति में उल्लास है, इससे कवि का मन और भी उदास हो जाता है।

काली आँखों का अन्धकार—चाँदनी रात, मलय पवन, और प्रकृति का उल्लास है। प्रिय की मदभरी काली आँखों की याद मन में मधुर व्यथा उत्पन्न करती है। इस जीर्ण हृदय की वही अवस्था है जो पतझड़ में सूखे किसलय की। पागल हृदय, फिर भी तू प्यार की माँग करेगा?

धीरे धीरे कवि इस व्यक्तिगत वेदना को भुलाने लगता है। उसकी दुःख-कथा तो लंबी है, पर उसे दोहराने से क्या लाभ होगा?

मधुप गुनगुना कर कह जाता—मधुप गिरी मुरझाई पत्तियों की गाथा सुना जाता है। मै भी कैसे चाँदनी रातों की गाथा सुनाऊँ—

मिला कहाँ वह सुख जिसका मै स्वप्न देख कर जाग गया?
आलिंगन आते-आते मुस्क्या करके जो भाग गया।

किसी की स्मृति का पाथेय लिए इस पथ पर चला जा रहा हूँ। मेरी कथा सुन कर क्या करोगे, मेरी व्यथा को सोया रहने दो।

निधरक तूने ठुकराया तब—तुमने मेरा प्यार ठुकरा दिया। काश कि इसे तुम्हारे चरणों की लाली मिल जाती। अब तो जीवन भर दुःख ढोना और रोना पड़ रहा है।

जीवन-रस के बचे हुए कन
बिखरे अम्बर मे आँसू बन,
वही दे रहा था सावन घन—
वसुधा की इस हरियाली को।

मेरी हूक और कसक सूखी डाली को भी झंकृत कर देती है। मेरे अधरों की प्यास नही बुझी, होठों पर फिर लाली नहीं आई। अच्छा! भूले प्रेम की सोच क्या?

जब व्यथा को व्यापक बनाकर कवि ने करुणा में बदल दिया,

और निराश प्रेम को विस्मृति के प्याले में ढाल कर पी लिया, तो फिर सोच करना ही बेकार है। अनेक कविताओं में आशा और अभिलाषा प्रगट हुई है।

अब जागो जीवन के प्रभात—निराशा से जो क्षोभ के आँसू बहे थे, अरुणगात ऊषा उन्हें बटोर रही है। उसकी किरणों में अन्धकार जा रहा है।

तम नयनों की तारायें सब—
मुँद रहीं किरण दल में हैं अब
चल रहा सुखद यह मलय वात।

सुखद मलयानिल चल रहा है। उठो और कलरव से भेंट करो।

कितने दिन जीवन जलनिधि में—जीवन समुद्र में कई लहरियाँ उठीं और गिरीं, अतीत की गाथाएँ निनादित हो उठीं। परन्तु न तो लहरियों को कूल मिला, न ही गाथाओं को सहारा। जीवन-जलनिधि के वक्ष पर स्मृतियाँ सूर्य, चन्द्र और तारागण के रूप में चित्रित हो जाती हैं और आशा का उदय होता है।

जीवन के अनुभवों से कवि निष्कर्ष निकालने लगा है। उसकी भावुकता में बौद्धिकता आने लगी है। उसकी चिन्तनशीलता ही उसे आशावान् बनाती है, और वह बहिर्मुखी होता जा रहा है।

अरे आ गई है भूली सी—बसन्त आया, इससे नई व्यथा जगी। अब पतझड़ के सूखे तिनके भागेंगे, आशा के अंकुर फूटेंगे। 'अंधकार का जलधि लाँघ कर आवेंगी शशि किरनें।' मै ऐसा एकान्त स्वप्नलोक बनाना चाहता हूँ, कोई इसमें बाधा न डाले।

इसी आशा में वह अपने प्रियतम से पुनर्मिलन की बात भी सोच सकता है।

मेरी आँखों की पुतली में तू बन कर प्राण समा जा रे—हे प्रियतम, आ और मेरी आँखों में समा जा, जिससे मेरा हृदय संगीत-

मय हो जाय, कण-कण में स्पन्दन हो, करुणा का अभिनन्दन हो; मेरे अधर पर ऐसी मुसक्कान खिले कि यह विश्व देखता ही रह जाय। आ और 'प्रेम-वेणु की स्वर-लहरी में जीवन-गीत सुना जा रे।'

जग की सजल कालिमा रजनी में—मेरे हृदय-जगत् का अन्धकार तुम्हारा मुख-चन्द्र भगा देगा। प्रिय, आओ प्रेमगीत सुना जाओ। 'जीवनधन! इस जले जगत् को वृन्दावन बन जाने दो।'

यहीं से कवि की आत्मा का विस्तार होता है। अपनापा खो कर वह 'जगत् को वृन्दावन' बनाने की चिन्ता करता है।

नीचे के गीत में अतीत की स्मृति, वर्तमान का विश्वास और भविष्य की आशा एक जगह प्रकट हुई है।

शशि सी वर सुन्दर रूप विभा—प्रियतम! अपना रूप-सौन्दर्य चाहे न दिखाओ, पर उसकी शीतल छाया (सुख स्मृति) तो रहने दो। मेरे जीवन का सुख-निशीथ कितना सुन्दर था। अब भी मुझे विश्वास है कि मेरे प्रेम का विस्तार होगा।

मेरा अनुराग फैलने दो, नभ के अभिनव कलरव में
जाकर सूनेपन के तम में, बन किरन कभी आ जाना।

कवि के प्रेम का विस्तार व्यक्ति से उठ कर लोक और परलोक तक होने लगा है। वह प्रेम और करुणा से उजड़े संसार को बसायेगा, जीवन का नव-निर्माण करेगा।

जग की सजल कालिमा रजनी में—···
स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो।
जीवन-धन! इस जले जगत् को वृन्दावन बन जाने दो॥

कवि की कल्पना-शक्ति लहरी की भांति—

कितने दिन जीवन जलनिधि में
··· ··· ··· ···

उठती गिरती-सी रुक-रुक कर
सृजन करेगी छवि गति-विधि में।

इस लहरी को अब अपना कूल मिल गया है। 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'अरे आ गई भूली सी', 'कितने दिन जीवन-जलनिधि में', 'जग की सजल कालिमा रजनी में', 'जगती की मंगलमयी उषा बन', आदि गीतों में प्रसाद जीवन-निर्माण, लोक-कल्याण और नव-सृजन का संदेश ले कर चले हैं। प्रसाद को पलायनवादी कहने वाले इन कविताओं की प्रगतिवादी भावना को हृदयंगम करें। प्रसाद ने प्रगतिवाद को अपने ढंग से समझा था।

प्रसाद मानवतावादी कवि थे। उन्होंने मानव के अनेक जीवन-पक्षों पर भी विचार किया। 'ओ री मानस की गहराई', 'वसुधा के अंचल पर', 'आह रे वह अधीर यौवन' और 'चिर तृषित कंठ से तृप्ति विधुर' में जीवन-दर्शन की व्याख्या की गई है। साधना, संयम और दर्शन का अवलम्ब पाकर ही तो कवि निराशा और विषाद का त्याग करने में समर्थ हुआ है।

ओ री मानस की गहराई—मनुष्य असीम शक्ति का भंडार है। मनुष्य की सारी समस्याओं का हल मानस की गहराई में है। इसी में सारा विश्व प्रतिबिंबित होता है। जीवन का एक-एक क्षण विषाद-युक्त हो जाता है और कभी एक सुख-लहर—'लघु लघु सुन्दर सुन्दर अविरल'—जीवन को प्रफुल्लित कर देती है। आकाश के तारा, कुंज के सुमन, प्रकृति का एक-एक कण मन की हँसी से खिल उठता है।

तू हँस जीवन की सुघराई।
यह विश्व बना है परछाईं।

चिर तृपित कंठ से तृप्ति-विधुर—सागर में लहरियाँ हैं, प्रकाश मे सब कुछ उज्ज्वल हो रहा है, ऊषा में राग है, डालियों पर कुसुम और सौरभ है, पर प्रेमी के मन में विराग, निराशा, पीड़ा, वासना

और अन्धकार है। कारण ?

धीरे से वह उठता पुकार—
'मुझको न मिला रे कभी प्यार'

अरे ! तू क्या जाने प्रेम का मर्म ? प्यार मिला नहीं करता। प्रेम का स्वभाव है देना, लेना नहीं। आत्मदान ही प्रेम है।

पागल रे ! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब।

इस कविता में निराश प्रेमी की वेदना का वर्णन तो है, पर कवि 'वञ्चकता, पीड़ा, घृणा, मोह' से परे 'कोमल, उज्ज्वल, उदार', 'स्मितिमय' प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करते है। वे तो कह ही आये हैं कि मानस आकाश की भाँति उदार हो, प्राणों में सागर की भाँति गहराई हो। एवं

तुम हो कौन और मै क्या हूँ, इसमे क्या है धरा सुनो,
मानस जलधि रहे चिर-चुम्बित मेरे क्षितिज उदार बनो।

आह रे वह अधीर यौवन—यौवन का लक्षण है मत्त आवेग, भावनाओं की निस्सीमता, बुद्धि-चापल्य, प्रेम और स्वातंत्र्य का विलास,

मधुर जीवन के पूर्ण विकास
विश्व-मधु-ऋतु के कुसुम विलास।

यह वह अभिलाषा भरा यौवन है जिसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य सब सुन्दर दिखाई देता है। यौवन में पहले वासना होती है, फिर जब वासना हट जाती है, तब सच्चे प्रेम और मधुर जीवन का विकास होता है।

वसुधा के अंचल पर—जीवन क्या है ? जलकण। ओस-कण कमल के पत्ते पर अपनी आभा प्रदर्शित करते हैं, परन्तु दूसरे ही क्षण विनष्ट हो जाते है। जब दो कण कमल-दल पर मिल जाते हैं

तो दल की उभरी हुई नसों के सहारे एक सुन्दर धारा वहने लगती है। कण-कण करते-करते अम्बुधि वन जाता है। आँसू भी तो जलकण हैं जिनसे जीवन में सरसता आती है, इसलिए

गिरने दो नयनों से उज्ज्वल
आँसू के कन मनहर;
वसुधा के अंचल पर!

जीवन और करुणा की इतनी व्यंजनापूर्ण व्याख्या अन्यत्र कहाँ मिलेगी? 'आँसू' काव्य में व्यक्तिगत करुणा के व्याख्याता प्रसाद की भावना कितनी उदार हो गई है।

याद रहे कि करुणा के अन्तर्गत वे सहानुभूति, स्नेह, विश्वप्रेम, कर्तव्यपरायणता आदि सब मानव धर्मों को लेते हैं।

प्रसाद की विचार-धारा पर बौद्ध-दर्शन का बहुत अधिक प्रभाव रहा है। वेदनाओं और वासनाओं से संघर्ष करने वाले कवि को इस उदार मानव-धर्म से सदा प्रेरणा, सान्त्वना और परितृप्ति मिली है। भूमण्डल पर स्नेह, करुणा, क्षमा का राज्य फैलाने वाले महात्मा बुद्ध ने

दुःख परितापित धरा को स्नेह जल से सींच

लोक-मंगल की भावना का विस्तार किया था। उन भगवान् की चरण-रज से पवित्र भूमि सारनाथ वनारस के पास ही वरुणा नदी के किनारे स्थित है। प्रसाद प्रायः सैर करते वहाँ चले जाते और प्रेरणा के अनेक सूत्रों का संग्रह करते। 'जगती की मंगलमयी उषा वन', और 'अरी वरुणा की शान्त कछार' शीर्षक कविताओं में उन्होंने सारनाथ और सारनाथ के महात्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कामना की है कि वौद्ध धर्म का सन्देश अमर रहे और संतप्त मानवता को शान्ति का लाभ होता रहे।

जगती की मंगलमयी उषा बन—यह गीत मूलगन्ध कुटी (सारनाथ) के समारोहोत्सव में मंगलाचरण के रूप में गाया गया था। मानव-समाज व्याकुल था। बुद्ध के जन्म से उसे सान्त्वना मिली। भयसंकुल रजनी बीत गई, दुःख की निर्ममता दूर हुई। वरुणा के जल में शीतलता भर गई। प्राची के उस पथिक ने आकर यहाँ के प्रत्येक परमाणु को पुनीत कर दिया, व्यथित विश्व में चेतना भर दी।

उस पावन दिन की पुण्यमयी
स्मृति लिये धरा है धैर्यमयी,
जब धर्मचक्र के सतत प्रवर्तन की प्रसन्न ध्वनि छाई थी।

कल्याण-संघ की यह भूमि मानवता को आमंत्रित करती आ रही है।

अरी वरुणा की शान्त कछार—मूलगन्ध कुटी (सारनाथ) में बौद्ध उत्सव हुआ। उस अवसर पर यह कविता पढ़ी गई थी। एक समय था कि वरुणा की शान्त कछार में ऋषियों के कानन-कुञ्ज थे, जहाँ दर्शन-परिषदों में मस्तिष्क और हृदय-सम्बन्धी समस्याओं पर विचार होता था—व्याकुलता को विश्राम मिलता था। 'छोड़ कर पार्थिव भोग विभूति', 'प्राणियों का करने उद्धार' महात्मा बुद्ध यहीं पधारे थे और अपना अमृतमय सन्देश दिया था कि 'तोड़ सकते हो तुम भवबन्ध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार।' धन्य है यह भूमि!

प्रकृति से भी प्रसाद जीवन की अनेक भावनाओं की प्रेरणा पाते रहे हैं। प्रकृति उनके सामने जीवन-मरण के अनेक रहस्यों का उद्घाटन करती है। जिस सौन्दर्य का उपभोग उन्होंने अतीत यौवन में किया था, वही सौन्दर्य उनको प्रकृति में मिलता है। सागर की लहरों में, पर्वत के शिखरों पर, ऊषा और संध्या की लाली में,

कोमल कुसुमों की मधुर रात में, प्रकाश और अंधकार दोनों में, अत्र, तत्र, सर्वत्र प्रिय का सौन्दर्य बिखरा है। पाँच-छः कविताओं में शुद्ध प्रकृति-वर्णन हुआ है—

हे सागर संगम हे अरुण नील—दूर क्षितिज पर सागर और आकाश मिल रहे हैं। नील सागर उषा-प्रेयसी से मिलने के लिए आतुर है, इसीलिए सागर में लहरें उठ रही हैं। आज सागर के संयम का बाँध टूट रहा है। प्रेयसी भी अतीत युग की गाथा गाती हुई चली आ रही है।

बीती विभावरी जाग री—ऊषा आ गई, तारे डूब गए, पक्षी कलरव करने लगे, फूल खिल उठे, लतिका मुकुल में रस-गागरी भर लाई है। पर, हे सखि, तुम मदमत्त सोई हो, जागो।

'विहाग' के स्वर में यह गीत प्रातःकाल गाये जाने के योग्य है। सांग रूपक का यह उत्कृष्ट उदाहरण है।

आँखों से अलख जगाने को—यह भी ऊषा-काल का वर्णन है। सचेत करने को यह भैरवी आई है। इसके अंगों में आलस्य और आँखों में लाली भरी है। मलय-पवन सूचना दे रहा है कि रात अँगड़ाई ले रही है। उधर क्षत-विक्षत सागर उद्वेलित हो कर छलछला रहा है।

कोमल कुसुमों की मधुर रात—रात्रि को प्रकृति में एक चहल-पहल है। चन्द्रमा खिला है, मलयज साँस ले रहा है। लाज भरी कलियाँ (टमटमाते तारे) घूँघट में कँप-कँप कर नीरव बातें कर रही हैं। नक्षत्र-कुमुदों के किरण-पात खुल गए हैं और कितने खुल कर के गिर गए। 'हो रहा विश्व सुख-पुलक-गात'।

अपलक जगती हो एक रात—रात्रि की शान्ति छाई है। कवि चाहता है कि सब सुख की नींद सोएँ—पवन, सुमन, नक्षत्र, पथ। सर्वत्र नीरव शान्ति छाई हो, और साथ ही वक्षःस्थल में जो छिपे हुए

सोते हो हृदय अभाव लिए
उनके सपनों का हो न प्रात।

प्रकृति का वर्णन करते हुए भी कवि लोक-मंगल की कामना करते हैं।

अंतरिक्ष में—रात्रि का अवसान हो रहा था। उषा अभी सो रही थी, प्राची की मधुशाला खुली नहीं थी, तारे पुलकित थे, विहग अपने-अपने नीड़ों में अँगड़ाई ले रहे थे, लेकिन रात दिन चलने वाला एक भिखारी टूटा प्याला लिये दान के लिए पुकार रहा था और अपनी यात्रा में चला ही जा रहा था।

'तू बढ़ जाता अरे अकिंचन छोड़ करुण स्वर अपना।
सोने वाले जग कर देखें अपने सुख का सपना।'

किन्तु, प्रकृति-सौन्दर्य तो पार्थिव है और प्रकृति-प्रेम भी वासना-मूलक है। अनन्त मार्ग का पथिक आध्यात्मिक प्रेम की खोज में अग्रसर होता है। सांसारिक प्रेम में उसने दुःख ही दुःख उठाया है। वह अब वहाँ चले जाना चाहता है जहाँ अविश्वास नहीं, धोखा नहीं। 'ले चल वहाँ भुलावा दे कर' से आरंभ होने वाले गीत में उस लोक की कल्पना की गई है जो संघर्ष, कोलाहल और दुःख से दूर है। कवि उस लोक में जाना चाहता है जहाँ मानस-सागर की लहरी निश्छल प्रेमकथा कहती है, जहाँ मधुर छाया में विभुता की व्यापकता और सुख-दुःख की सत्यता स्पष्ट होती है।

जहाँ साँझ-सी जीवन छाया
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती है,
ताराओं की पाँति घनी रे।

जिस गम्भीर मधुर छाया में—
विश्व चित्रपट चल माया में—

विभुता विभु-सी पड़े दिखाई,
दुख-सुख वाली सत्य बनी रे।
तज कोलाहल की अवनी रे।

यह जगत् निराशा से भिन्न आशा का और पीड़ा से भिन्न आनन्द का जगत् है। इसी प्रकार की कल्पना 'अरे आ गई है भूली सी' वाले गीत में की गई है—

वसुधा नीचे ऊपर नभ हो,
नीड़ अलग सब से हो।
झाडखंड के चिर पतझड में,
भागो सूखे तिनको!
आशा के अंकुर झूलेंगे,
पल्लव पुलकित होंगे।
मेरे किसलय का लघु भव यह,
आह, खलेगा किन को।
सिहरभरी कँपती आवेंगी,
मलयानिल की लहरें।
चुम्बन ले कर और जगाकर,
मानस नयन नलिन को।
जवा कुसुम-सी उषा खिलेगी,
मेरी लघु प्राची में।
हँसी भरे उस अरुण अधर का,
राग रँगेगा दिन को।
इस एकान्त सृजन में कोई,
कुछ बाधा मत डालो।

व्यक्ति से प्रकृति और प्रकृति से विश्वात्मा की ओर बढ़ने वाला यह साधक अपनी खोज में चला ही जा रहा है। वह गा उठता है—

अरे कहीं देखा है तुमने
मुझे प्यार करने वाले को ?
मेरी आँखो में आकर फिर
आँसू बन ढरने वाले को ?

उस मेरे प्रियतम को जिसे मैं रजनी के अंधकार में, धरती के अंग-अंग में, दुःख और सुख में व्यक्त पाता हूँ, और जो आज मौन मरने वाले प्रेमी को देख कर काँपने लगा है।

अन्ततः कवि को अपनी खोज में सफलता मिल ही जाती है। वे अपने प्रिय के साथ आँख-मिचौनी खेलते हैं—

निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप जाओगे ?—प्रिय ! तुम धीरे-धीरे पैर जमाकर आते हो। क्या तुम समझते हो कि मै तुम्हारा आना नहीं जान पाऊँगा ? 'तुम कोमल किरन-उँगलियों से ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ,' और फिर चुप हो जाओगे ! नहीं प्रिय ! मेरे धैर्य का बाँध टूट जायगा। यह खेल मुझे पसन्द नहीं— 'वेला बीत चली है चंचल बाहु-लता से आ जकड़ो।' मेरे मानस-जलधि का चुम्बन करो। मैं और तुम एकाकार हो जायँ।

हमने देखा कि 'लहर' 'झरना' से आगे बढ़ी है। इसमें विरह, स्मृति, उल्लास, विषाद आदि का रूप अधिक हृदयग्राही और कलापूर्ण हुआ है। कवि अंधकार से प्रकाश में आया है। ऐसा तो नहीं है कि निराशा और दुःख का एकदम अन्त हो गया हो। अतीत के प्रति आग्रह अब भी बना है। बचपन का भोलापन और यौवन का उन्माद याद आता है तो मन विक्षुब्ध हो उठता है। साधारणतः लालसा, तृषा और विषाद के स्थान पर संयम, शान्ति और आनन्द का भाव जाग्रत हो रहा है। जीवन आशामय और आकर्षक जान पड़ता है। कवि अपने व्यक्तिगत जीवन

और सामूहिक जीवन के अनेक प्रश्नों पर विचार करता है। धीरे-धीरे वह व्यक्ति से समाज की ओर और समाज से राष्ट्र की ओर बढ़ता है।

संग्रह के अंत में जो कथाकाव्य संगृहीत हैं, उन सब के पीछे राष्ट्रभावना की प्रेरणा है। 'कामायनी' में यह भावना और भी अधिक विस्तृत होकर विश्व-कल्याण के रूप में प्रगट हुई है। प्रसाद के आत्मविस्तार का यही रहस्य है।

'लहर' में चार आख्यानक कविताएँ संगृहीत हैं—अशोक की चिंता, शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण, पेशोला की प्रतिध्वनि, और प्रलय की छाया। चारों की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है।

अशोक की चिन्ता—कलिंग विजय का भीषण नर-संहार देखकर सम्राट् अशोक की मनःस्थिति इस प्रकार थी—यह जीवन क्षणभंगुर है, फिर तृष्णा और लालसा के लिए इतना रक्तपात क्यों? शत्रु के पराजित होने से मगध का सिर तो ऊँचा हुआ, किन्तु दूर से आती हुई क्रन्दन-ध्वनि विजयी का अभिमान भंग कर रही है। यह वास्तविक विजय नहीं है। शासन तो मानव के मन पर होना चाहिए। विजय और पराजय पाखण्ड हैं। यह वैभव, यह ऐश्वर्य, यह राग-रंग क्षणिक तरंग सा है। 'इस नील विषाद गगन में, सुख चपला-सा दुःख-घन मे।' सृष्टि के कण-कण में विषाद है। वायु के स्वरों में करुण गाथा है। उषा उदास आती है, पीला मुख ले कर चली जाती है। 'जलती सिकता का यह मग'—यह जीवन-पतंग जलता जा रहा है।

भुनती वसुधा तपते नग
दुखिया है सारा अग जग
कंटक मिलते हैं पग पग
जलती सिकता का यह मग

वह जा बन करुणा की तरंग
जलता है यह जीवन पतंग ।

इस कविता में बौद्ध दर्शन का दुःखवाद और करुणावाद भरा है। जीवन की क्षणभंगुरता देखकर अशोक निवृत्ति-मार्ग की ओर प्रवृत्त हो गया। 'यह क्षणिक चल रहा राग-रंग'—इससे उसके हृदय पर एक चोट लगी और वह बौद्ध हो गया।

शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण – इस घटना का सम्बन्ध पंजाब के इतिहास से है। शेरे पंजाब महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेजों और सिक्खों के बीच में दो युद्ध हुए। प्रथम युद्ध के परिणाम-स्वरूप अंग्रेजों ने अमृतसर के पूर्व का भाग हस्तगत कर लिया। दूसरा युद्ध गुजरात (पंजाब) और उसके निकटवर्ती प्रदेश मे हुआ।

चिलियाँवाला में सिक्खों ने शत्रुओं का सामना किया। वे वीर थे। उनके हाथों में कृपाण नाचती लपलप करती थी—जीभ जैसे यम की। वह तलवार लूट-भय-त्रास के प्रचार के लिए कभी नहीं उठती थी, लेकिन

जन्मभूमि दलित विकल अपमान से
त्रस्त हो कराहती थी
कैसे फिर रुकती ?

जब उन्हीं के अपने सेनापति लालसिंह ने छल किया और वह शत्रुओं से मिल गया, तो वीरता क्या करती ? लालसिंह ने काठ के गोले और आटे का बारूद भेजा, तब ऐसे युद्ध में मृत्यु ही विजय थी। प्रवंचकों ने सतलज का पुल तोड़ दिया, श्यामसिंह (अटारी वाला) जैसे वीर मारे गए। सिक्ख प्राणपण से लड़े, पर हार गए।

वीर पञ्चनद के सपूत मातृभूमि के
सो गये प्रतारणा की थपकी लगी उन्हें
छल-बलिवेदी पर आज सब सो गये।

रूप भरी, आशा भरी यौवन अधीर भरी
पुतली प्रणयिनी का बाहुपाश खोलकर,
दूध भरी दूध सी दुलार भरी माँ की गोद
सूनी कर सो गए।

शेरसिंह ने हथियार डाल दिये।

ले लो यह शस्त्र है
गौरव ग्रहण करने का रहा कर में
अब तो न लेशमात्र है।

वास्तव में रणजीतसिंह की मृत्यु आज हुई है। तलवार को संबोधित करते हुए शेरसिंह कहता है

ए री रण-रंगिनी!
सिक्खों के शौर्य भरे जीवन की संगिनी!
कपिशा हुई थी लाल तेरा पानी पान कर
दुर्दिन दुरन्त धर्म दस्युओं की त्रासिनी—
निकल, चली जा तू प्रतारणा के कर से।

कविता अतुकांत है।

पेशोला की प्रतिध्वनि—यह कविता भी राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। देश आज संकट में है, इसे किसी वीर राजपूत की आवश्यकता है। पेशोला के तरल जल-मण्डलों में केवल एक प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है—

"कौन लेगा भार यह ?
कौन विचलेगा नहीं ?
....

अरावली शृङ्ग-सा समुन्नत सिर किसका ?
बोलो, कोई बोलो—अरे क्या तुम सब मृत हो ?

आह, इस सेवा की!—
कौन थामता है पतवार ऐसे अन्धड में।"

लेकिन इसका प्रत्युत्तर कौन दे? महाराणा प्रताप की इस भूमि में (उदयपुर नगर पेशोला झील के किनारे बसा है) वीरता नहीं रह गई।

प्रलय की छाया—इस सुन्दर कथा-काव्य में गुजरात की एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर नारी का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उपस्थित किया गया है। गुर्जर के राजा करणसिंह की पत्नी कमला देवी के अन्तर की यह कथा है—मै यौवन और सौन्दर्य से पागल हो उठी थी। समस्त गुजरात का कौमार्य मुझ में ही घनीभूत था। विश्व का वैभव मेरे चरणों में लोट रहा था। सृष्टि की समस्त स्निग्धता मुझे छू लेने के लिए आतुर थी।

कितना सोहाग था, कैसा अनुराग था?
खिली स्वर्ण मल्लिका की सुरभित वल्लरी सी
गुर्जर के थाले मे मरन्द वर्षा करती मैं।

अनायास नियति बदली। सुलतान अलाउद्दीन का आक्रमण हुआ। एक बार फिर सती पद्मिनी के आत्मगौरव की गाथाएँ गूँज उठीं। मैं भी अपने वीर पति के साथ देश की आपत्ति में कूद पड़ी। एक दिन मेरे पति युद्ध करते हुए दूर निकल गए और मै वंदी हुई। कभी सोचती थी प्रतिशोध लेना पति का, और कभी चाहती थी सौंदर्यानुभूति जगाना सुलतान के निर्मम हृदय में। चाहा, पर आत्महत्या भी कर न सकी। सोचा—'जीवन सौभाग्य है, जीवन अलभ्य है।'

एक दिन मेरा अनुचर मानिक गुर्जरेश का सन्देश लाया कि तू अपने प्राणों का अंत कर ले। लेकिन मैंने अलाउद्दीन को स्वीकार कर लिया।

बिखरे प्रलोभनों को मानती सी सत्य मैं।
शासन की कामना में झूमी मतवाली हो॥

मानिक काफूर खुसरू नाम से सुलतान का दास बन गया और अवसर पा कर उसने अलाउद्दीन का वध कर दिया। मैं पश्चात्ताप से सिहर उठी। मेरे कुलुपित सौन्दर्य का नक्षत्र ज्योतिहीन हो कर कालिमा की धारा में डूब गया।

कला की दृष्टि से यह कथाकाव्य सर्वोत्कृष्ट है। कमलावती के रूप-सौंदर्य-वर्णन में मौलिकता और मादकता भरी है।

नूपुरों की झनकार घुली-मिली जाती थी
चरण अलक्तक की लाली से।
जैसे अन्तरिक्ष की अरुणिमा
पी रही दिगन्त-व्यापी संध्या-संगीत को।
कितनी मादकता थी।
लेने लगी झपकी मैं
सुख-रजनी की विश्रंभ-कथा सुनती।

नारी की मानसिक प्रवृत्तियों—विशेषतः अन्तर्द्वन्द्व की विभिन्न स्थितियों का चित्रण बड़े वैज्ञानिक और स्वाभाविक ढंग से हुआ है।

कभी सोचती थी प्रतिशोध लेना पति का
कभी निज रूप सुन्दरता की अनुभूति
क्षण भर चाहती जगाना मैं
सुलतान ही के उस निर्मम हृदय में,
नारी मैं!

एक बार सोचा कि आत्महत्या कर लूँ, फिर विचार आया कि

जीवन अनन्त है
इसे छिन्न करने का किसे अधिकार है?
....

जीवन ही प्यारा है, जीवन सौभाग्य है।

कभी नारीत्व का गर्व कभी उसकी दुर्बलता, कभी प्रतिशोध और कभी तेजस्विता का चित्रण करके कवि ने नारी हृदय के अनेक पक्षों पर प्रकाश डाला है।

वासना का घोर परिणाम और रूप-सौन्दर्य के मिथ्या अभिमान का अन्त मार्मिक रीति से बताया गया है—

ढुलक रही है हिम-बिन्दु-सी
सत्ता सौन्दर्य के चपल आवरण की।
हँसती है वासना की छलना पिशाची-सी
....

ले चली बहाती हुई अन्ध के अतल में
वेग भरी वासना।

अलंकार-योजना, शब्द-सौष्ठव आदि की दृष्टि से पूरी कविता पठनीय और प्रशंसनीय है।

'कथा', 'हृदय-वेदना', 'मिल जाओ गले', और 'प्रियतम' आदि कविताओं में।

एवं, 'झरना' की 'खोलो द्वार', 'वसन्त की प्रतीक्षा', 'वालू की वेला', 'अर्चना', 'निवेदन' 'कसौटी' आदि अनेक कविताओं में प्रिय ही है, प्रिया नहीं है। 'लहर' के गीतों में भी यही बात है। 'प्रेमपथिक' में तो नायिका भी है। इस पर भी 'प्रिय चले गये' आदि प्रयोग मिलते हैं! और तो और, नाटकों में जहाँ पुरुष पात्र अपनी प्रिया को साक्षात् सम्बोधित करता है तो भी वह उसके लिए पुँल्लिग शब्दों का प्रयोग करता है। नायक-नायिका के नाम से जो अश्लीलता रीतिकालीन शृंगारी काव्य में आ गई थी, उससे बचने के लिए सम्भवतः प्रसाद जी ने इस शैली को अपनाया। निश्चय ही इससे प्रेमभावना संयत रही है।

अब प्रश्न उठता है कि यह व्यक्ति कौन था? 'आँसू' के पढ़ने से ('झरना' की कविताओं से भी, बल्कि 'प्रेम-पथिक से ही) स्पष्ट होता है कि कवि ने किसी से प्रेम किया था; और यह प्रेम-व्यापार कई दिनों तक चलता रहा। परन्तु सहसा वह समाप्त हो गया। प्रिय ने प्रेमी को छोड़ दिया—उसके प्रेम को ठुकरा दिया। जहाँ मिलन-सुख की तरंगें थीं, वहाँ विरह की ज्वाला भड़कने लगी—रह गई स्मृतियाँ, वेदनाएँ और आँसू की झड़ियाँ। 'आँसू' इसी विरह-कथा की कहानी है। प्रसाद जी के एक घनिष्ठ मित्र, विनोदशंकर व्यास, ने इस सम्बन्ध में प्रसाद जी से पूछा भी था तो उत्तर में वे केवल हँस दिये जिसका अर्थ व्यास जी ने यह बताया है कि प्रसाद ने किसी से प्रेम किया था। सीधी-सादी बात है—प्रसाद की एक पत्नी मर गई, दूसरी मर गई। पत्नी से प्रेम तो रहा ही होगा। वह प्रेम विच्छिन्न हो गया—शेष रह गई विरह-व्यथा और स्मृति। इसी को कवि ने कल्पना द्वारा थोड़ा भिन्न रूप दे दिया तो कुछ अद्भुत बात तो नहीं हो गई।

कलात्मकता में सुधार हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पहले संस्करण को ध्यान में रखते हुए ही लिखा था कि "सारी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव निष्पन्न नहीं होता।" इसका कारण यह था कि पहले 'आँसू' केवल मुक्त पद्यों का संग्रह था। द्वितीय संस्करण में इनका क्रम बदल कर और इनमें इतरेतर सम्बन्ध जोड़कर एक लड़ी में पिरो दिया गया। अब इस कृति में एक तारतम्य आ गया और प्रेम-वेदना-करुणा का प्रभाव प्रवहमान तथा शृंखलाबद्ध हो गया। यह अलग बात है कि प्रत्येक छंद के मुक्तकत्व का आस्वाद भी अक्षुण्ण बना रहा।

इस करुणा-कलित हृदय में अब वेदना की रागिनी बज रही है। परन्तु कभी-कभी पिछले सुख के दिनों की मधुर स्मृतियाँ आ जाती हैं—वह मिलन का सुख जो आज सपना हो गया है। उसकी स्मृतियाँ मेरे हृदय में ऐसे बसी हैं 'नक्षत्र लोक फैला है जैसे इस नील निलय मे।' प्रेम के सागर में आज बरबस बाड़व ज्वाला जग उठी है। हृदय में जो ज्वालामयी जलन है, वही आँसू बन कर निकल रही है। अनेक अभिलाषाएँ जाग-जाग कर सो जाती हैं। मेरे प्रश्न शून्य क्षितिज से प्रतिध्वनित होकर लौट आते हैं। यह आकाश-गंगा मेरे दुःख की तरह असीम है; यह उषा मेरे दुःख में रोती है और संध्या मेरे स्वर्ण-सुखों पर ढक देती है निराशा की अलकें। प्रेम की क्रीड़ा कितनी मादक थी, कितनी मोहमयी थी; पर अब एक टीस सी उठती है जो हृदय को हिला देती है। हृदय में आग जल रही है—आँसू इसे और उत्तेजित कर देते हैं। मेरा यह हृदय-कमल उसकी भौंरों के समान काली आँखों में उलझ गया था। ये आँसू उसी हृदय-कमल का मकरंद हैं। सुख नष्ट हो गया है, उमंगें सो गई हैं; अतः जीवन भार हो गया है। बेकार साँसों

४. आँसू

'आँसू' का प्रसाद की काव्यकृतियों में विशिष्ट स्थान है। यह उनकी पहली रचना थी जिसने वास्तव में हिन्दी जगत् को आकृष्ट किया। 'आँसू' के प्रथम संस्करण (१९२५ ई०) में २५२ पंक्तियाँ थीं, आठ वर्ष बाद कवि ने स्वयं १२८ पंक्तियाँ और बढ़ा दीं। प्रथम संस्करण में केवल व्यक्तिगत वेदना थी, द्वितीय संस्करण में यह वेदना जगत् की मंगल-कामना में परिणत हो गई, निराश भावनाओं में आशा का प्रकाश आया और प्रेम का स्वरूप अधिक व्यापक हो गया। 'आँसू' का कवि पहले अपने लिए रोया—निजी पीड़ा से; अब वह दूसरों के लिए रोया—समवेदना और करुणा से भरकर। प्रथम संस्करण में लगता है कि प्रेम भौतिक शरीर तथा पार्थिव सौन्दर्य के प्रति रहा। द्वितीय संस्करण में उसे रहस्यवादी आवरण में रखकर आध्यात्मिक रूप देने की चेष्टा की गई है। अथवा यों कहा जाये कि प्रथम संस्करण में 'आँसू' विशुद्ध प्रेम-स्मृति-काव्य है; परिवर्तित-परिवर्द्धित संस्करण में अद्वैतवाद, वेदनावाद, करुणावाद जैसी भावनाएँ समाविष्ट हो जाने से प्रेमभित्ति निर्बल और इसकी भावभूमि शिथिल हो गई है। अलबत्तः

कलात्मकता में सुधार हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पहले संस्करण को ध्यान में रखते हुए ही लिखा था कि "सारी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव निष्पन्न नहीं होता।" इसका कारण यह था कि पहले 'आँसू' केवल मुक्त पद्यों का संग्रह था। द्वितीय संस्करण में इनका क्रम बदल कर और इनमें इतरेतर सम्बन्ध जोड़कर एक लड़ी में पिरो दिया गया। अब इस कृति में एक तारतम्य आ गया और प्रेम-वेदना-करुणा का प्रभाव प्रवहमान तथा शृंखलाबद्ध हो गया। यह अलग बात है कि प्रत्येक छंद के मुक्तकत्व का आस्वाद भी अक्षुण्ण बना रहा।

इस करुणा-कलित हृदय में अब वेदना की रागिनी बज रही है। परन्तु कभी-कभी पिछले सुख के दिनों की मधुर स्मृतियाँ आ जाती हैं—वह मिलन का सुख जो आज सपना हो गया है। उसकी स्मृतियाँ मेरे हृदय में ऐसे बसी हैं 'नक्षत्र लोक फैला है जैसे इस नील निलय में।' प्रेम के सागर में आज बरबस बाड़व ज्वाला जग उठी है। हृदय में जो ज्वालामयी जलन है, वही आँसू बन कर निकल रही है। अनेक अभिलाषाएँ जाग-जाग कर सो जाती हैं। मेरे प्रश्न शून्य क्षितिज से प्रतिध्वनित होकर लौट आते हैं। यह आकाश-गंगा मेरे दुःख की तरह असीम है; यह उषा मेरे दुःख में रोती है और संध्या मेरे स्वर्ण-सुखों पर ढक देती है निराशा की अलकें। प्रेम की क्रीड़ा कितनी मादक थी, कितनी मोहमयी थी; पर अब एक टीस सी उठती है जो हृदय को हिला देती है। हृदय में आग जल रही है—आँसू इसे और उत्तेजित कर देते हैं। मेरा यह हृदय-कमल उसकी भौंरों के समान काली आँखों में उलझ गया था। ये आँसू उसी हृदय-कमल का मकरंद हैं। सुख नष्ट हो गया है, उमंगें सो गई हैं; अतः जीवन भार हो गया है। बेकार साँसों

का बोझ ढो रहा हूँ । मेरे जीवन की समस्या जटिल हो गई है—योगी की जटा की तरह । भावों का एक तूफान उठ रहा है । उन मिलन के दिनों का स्मरण करके क्षण भर मन अवश्य बहल जाता है ।

मधु राका मुसक्याती थी पहले देखा जब तुम को ।
परिचित से जाने कब के तुम लगे उसी क्षण हम को ।

मेरा शुष्क हृदय रस से भर गया था—

पतझड़ था, झाड़ खड़े थे सूखी सी फुलवारी में
किसलय नव कुसुम बिछाकर आये तुम इस क्यारी में ।

तब तुम शशिमुख को घूँघट में छिपाये मेरे हृदय में आये थे । आज भी वह सौन्दर्य अन्तस्तल में अंकित है—वे बिखरी अलकें, वे काली आँखें, वह स्मिति, वह भ्रूभंगिमा, उस पावन शरीर की वह शोभा । मैंने तुम्हें अपनाते समय अपने मन में कोई सीमा नहीं बाँधी थी । तुम्हारी रूप माधुरी

छलना थी, तब भी मेरा उसमें विश्वास घना था
उस माया की छाया में कुछ सच्चा स्वयं बना था ।

जब मै बेसुध, असतर्क, अपलक था, तब तुमने मेरी जीवन-मदिरा पी ली और खाली पात्र को लुढ़का दिया । मेरा हृदय नवनीत था जो अब जल गया । किंजल्क बिखर गया, पराग सूख गया । मैं तो उस शिरीष-सुमन सा हो गया जो वसन्त-रजनी के पिछले पहर में खिले और प्रभात होते ही धूल में मिल जाये । हमारा-तुम्हारा मिलन जैसे चन्द्रमा और समुद्र का हो । कहाँ आकाशचारी चन्द्रमा, और कहाँ पृथ्वी पर का समुद्र ! अब यह समुद्र फेनिल है, आग उगल रहा है । अरे नहीं, समुद्र तो सूख गया, और मेरी मन की नैया सूखी सिकता में पड़ी रह गई । मेरे मन की वेदनाएँ आकाश को छूने लगी हैं । उच्छ्वासों और आँसुओं से दुःखी मन तुम्हारे मिलन की कल्पना

से विश्राम पाता है, पर वह भी क्षण भर। विश्राम मिलता है रो-रो कर सो जाने में। पर इस संघर्षमय जीवन में रात को विश्रांति कहाँ? वेदना की ज्वाला तो सतत भड़कती रहती है।

मेरे हृदय की पीड़ा अधिक तीव्र हो उठी है, अब उस में दैन्य-प्रदर्शन का भाव ही नष्ट हो गया है। मेरे सामने शुष्कता का सागर फैला हुआ है, अपनी नाव को आँसू की धार में से ले जाना होगा। आँसू मेरे जीवन को सरस कर देंगे। तुम्हारे रूप-सौन्दर्य का अमृत मुझे शीतलता देगा ही। देखो तो, आकाश-वन में जूही के समान तारे खिल रहे हैं। मेरी उसासें प्रिय को अवश्य खींच लायेंगी, इसका मुझे विश्वास है। उसासों और आँसुओं से दुःखी मन को आराम मिलता है।

उच्छ्वास और आँसुओं में विश्राम थका सोता है
रोई आँखो में निद्रा बनकर सपना होता है।

सपने में पिय का मिलन-सुख होता है, वेदनाएँ सो जाती है।

सुख और दुःख जीवन के दो किनारे हैं जो आँसू की वर्षा से भरे रहते हैं। यहाँ न एकान्त सुख है न एकान्त दुःख। विरह-मिलन का प्रणय चलता रहता है।

लिपटे सोते हैं मन में सुख दुख दोनो ही ऐसे
चन्द्रिका अँधेरी मिलती मालती कुञ्ज मे जैसे।

इसलिए हे दुःखी प्रेमी, तू क्यों अपने दुःख को भीतर ही भीतर पीता रहता है? इसे संसार के सामने खोलकर रख दे। हर्ष और विषाद दोनों को एक कर दे। तुझे सुख मिलेगा।

वह हँसी और यह आँसू घुलने दे—मिल जाने दे;
बरसात नई होने दे कलियो को खिल जाने दे।

प्रेमवेदने! तुम धन्य हो! तुम सदा प्रकाशमयी हो।

मणिदीप विश्व-मन्दिर की पहने किरणों की माला
तुम एक अकेली, तब भी जलती हो मेरी ज्वाला।

यह जगती दुःखों से भरी है। तुम इसके दुःखों को होली की तरह भस्म कर देती हो। तुम्हारी ज्वाला में संसार की सारी कालिमा जल जाती है।

निर्मम जगती को तेरा मङ्गलमय मिले उजाला
इस जलते हुए हृदय की कल्याणी शीतल ज्वाला!
हे मेरे प्रेम! विहँसते जागो, मेरे मधुवन में
फिर मधुर भावनाओं का कलरव हो इस जीवन में।

तुम संसार में व्याप्त होकर उसे सुखमय बना दो। तुम मानस-सरोवर में कमल के समान खिल उठो और मधुपों की मीठी गुंजार के समान मुखर बन जाओ।

मधु-संसृति की पुलकावलि, जागो अपने यौवन में;
फिर से मरन्द-उद्गम हो कोमल कुसुमों के वन में।

यदि मेरी वेदना मधुर हो जाये, तो मैं अपनी आत्मा का विस्तार पा लूँ। तब मेरी वेदना अनन्त तक पहुँचकर उसको भी हिला देगी। जब वेदना जाग्रत होती है तो आँसू बहते हैं। करुणा की इन बूँदों में आनन्द बरसता है। वेदना की धारा में मन के सब कलुष धुल जाते हैं। वेदना से सहानुभूति और सरसता आती है और मनुष्य सत्पथ पर अग्रसर होता है।

सब का निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन-सा
आँसू इस विश्व-सदन में।

'आँसू' को पढ़ते हुए पहला प्रश्न यह होता है कि इसका

आलम्बन कौन है? प्रसाद ने उसके लिए पुँल्लिंग शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे

१. तुम सत्य रहे चिर सुन्दर
मेरे इस मिथ्या जग के
थे केवल जीवन संगी।
२. गौरव था, नीचे आये
प्रियतम मिलने को मेरे।
३. मादकता से आये तुम
सज्ञा से चले गये थे।
४. इस शिथिल आह से खिंचकर
तुम आओगे—आओगे।

कहा जाता है कि यह उर्दू के प्रभाव से है। उर्दू में प्रेमी और प्रिय दोनों पुँल्लिंग रूप में आते हैं। कुछ लोग यह मानते है कि 'आँसू' रहस्यवादी कृति है, और यह प्रिय वही अज्ञात रहस्यमय परम पुरुष है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिख दिया कि "आँसू तो वास्तव में हैं शृङ्गारी विप्रलंभ के, जिनमें अतीत सुख की खिन्न स्मृतियाँ रह-रह कर झलक मारती हैं, पर कभी-कभी वे 'उस अज्ञात प्रियतम के लिए बहते जान पड़ते हैं।' बस, आलोचकों ने इस मन्तव्य को प्रतिध्वनित कर दिया, और प्रमाण में कुछ संकेत भी आँसू से उल्लिखित किये, जैसे

१. परिचित से जाने कब के,
तुम लगे उसी क्षण हमको।
२. कुछ शेष चिह्न हैं केवल
मेरे उस महामिलन के।
३. आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी।

जीवन में कभी ऐसा भी होता है कि किसी व्यक्ति के प्रति अकस्मात् मन आकृष्ट होता है, सहज प्रेम उमड़ आता है, मानों कोई पिछले जन्म का सम्बन्ध रहा हो। वह चिरपरिचित सा लगता है। ऐसा कहने में रहस्यवादी संकेत क्या हो सकता है, यह भाषा के साधारण प्रयोग जानने वाला भी नहीं समझ सकता।

प्रेमी के लिए वह मिलन महामिलन ही हो गया जिसके बाद फिर प्रिय-मिलन नहीं हुआ। विरहतप्त प्रेमी के लिए उस मिलन की स्मृति कितनी महत्त्वपूर्ण है! स्वभावतः वह उसे अपने हृदय में सँजोये हुए है और उसे 'महामिलन' कहता है।

प्रेमी की पुकार को कोई सुनने वाला नहीं। न जाने उसका प्रिय कहाँ चला गया। मुहावरे में यही कहा जायगा कि उसकी पुकार शून्य में नष्ट हो जाती है, अथवा शून्य से टकरा कर उसी के पास लौट आती है। 'शून्य' शब्द से ही रहस्यवादी अर्थ हो गया, यह तो विचित्र बात है!

वस्तुतः इस प्रकार की पंक्तियों में रहस्यवाद का आभास मात्र मिलता है। कवि ने यत्र-तत्र अपने प्रिय को अलौकिक आभा से युक्त करने का प्रयत्न किया है जिस से लगता है कि कवि उस परोक्ष सत्ता के प्रति प्रेम और विरह का संकेत करता है। परन्तु 'आँसू' मानवीय काव्य है, और उसका आलम्बन निश्चय ही मानव है। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ठीक कहते हैं—

"आँसू को अध्यात्म और छायावाद का नाम दे कर उसे जटिल बना देने के पहले उसको उसके प्रकृत रूप में देखना चाहिए। विरह का इतना बड़ा मार्मिक वर्णन करने वाले कवि को किसी वाद की छाया लेने की जरूरत नहीं—उसकी उच्चता स्वयं सिद्ध है।··· पर कहने से क्या लाभ कि यह वियोग अधिक मार्मिक और सत्य है?"

यदि 'आँसू' का आलम्बन वही 'अज्ञात' माना जाय तो स्थूल शरीर का नख-शिख वर्णन करने में कोई संगति नहीं है। निम्न-लिखित पंक्तियों का आधार ससीम व्यक्ति तो हो सकता है, असीम विराट् परमात्मा नहीं—

१. आँखों में काली पुतली
पुतली मे श्याम झलक सी।
२. कोमल कपोल पाली में
सीधी सादी स्मित रेखा।
३. मुख कमल समीप सजे थे
दो किसलय से पुरइन के।
४. थी किस अनङ्ग के धनु की
वह शिथिल शिञ्जिनी दुहरी। इत्यादि।

यह निश्चित है कि 'आँसू' का आलंबन पारलौकिक नहीं है। वह कोई पार्थिव है जो—

शशि-मुख पर घूँघट डाले
आंचल में दीप छिपाये

प्रेमी के स्निग्ध हृदय में प्रविष्ट हुआ था और फिर चला गया।

मादकता से आये तुम
संज्ञा से चले गये थे
हम व्याकुल पडे बिलखते
थे, उतरे हुए नशे से।

परन्तु, वह पुरुष नही था, नारी ही थी; 'घूँघट डाले' और 'आँचल में दीप छिपाये', 'बिखरी थीं उनकी अलकें', 'वह शिथिल शिञ्जिनी दुहरी' आदि से उसका रूप हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है। वह थी कोई 'माया की छाया' ही। उसे गोपनीय रखने के लिए पुंल्लिग का प्रयोग पहले भी प्रसाद ने किया है 'कानन-कुसुम' की 'मर्म-

कथा', 'हृदय-वेदना', 'मिल जाओ गले', और 'प्रियतम' आदि कविताओं में।

एवं, 'झरना' की 'खोलो द्वार', 'वसन्त की प्रतीक्षा', 'बालू की वेला', 'अर्चना', 'निवेदन' 'कसौटी' आदि अनेक कविताओं में प्रिय ही है, प्रिया नही है। 'लहर' के गीतों में भी यही बात है। 'प्रेमपथिक' में तो नायिका भी है। इस पर भी 'प्रिय चले गये' आदि प्रयोग मिलते है! और तो और, नाटकों में जहाॅ पुरुष पात्र अपनी प्रिया को साक्षात् सम्बोधित करता है तो भी वह उसके लिए पुँल्लिग शब्दों का प्रयोग करता है। नायक-नायिका के नाम से जो अश्लील-ता रीतिकालीन शृंगारी काव्य में आ गई थी, उससे बचने के लिए सम्भवतः प्रसाद जी ने इस शैली को अपनाया। निश्चय ही इससे प्रेमभावना संयत रही है।

अब प्रश्न उठता है कि यह व्यक्ति कौन था? 'आॅसू' के पढ़ने से ('झरना' की कविताओं से भी, बल्कि 'प्रेम-पथिक से ही) स्पष्ट होता है कि कवि ने किसी से प्रेम किया था; और यह प्रेम-व्यापार कई दिनों तक चलता रहा। परन्तु सहसा वह समाप्त हो गया। प्रिय ने प्रेमी को छोड़ दिया—उसके प्रेम को ठुकरा दिया। जहाॅ मिलन-सुख की तरंगें थीं, वहाॅ विरह की ज्वाला भड़कने लगी—रह गई स्मृतियाॅ, वेदनाऍ और आॅसू की झड़ियाॅ। 'आँसू' इसी विरह-कथा की कहानी है। प्रसाद जी के एक घनिष्ठ मित्र, विनोदशंकर व्यास, ने इस सम्बन्ध में प्रसाद जी से पूछा भी था तो उत्तर में वे केवल हॅस दिये जिसका अर्थ व्यास जी ने यह वताया है कि प्रसाद ने किसी से प्रेम किया था! सीधी-सादी वात है—प्रसाद की एक पत्नी मर गई, दूसरी मर गई। पत्नी से प्रेम तो रहा ही होगा। वह प्रेम विच्छिन्न हो गया—शेप रह गई विरह-व्यथा और स्मृति। इसी को कवि ने कल्पना द्वारा थोड़ा भिन्न रूप दे दिया तो कुछ अद्भुत वात तो नहीं हो गई।

ऐसे कवि भी तो है जिन्होंने कभी किसी से प्रेम किया नही, विरह का दुःख देखा नहीं, इस पर भी प्रेम और विरह संबंधी अत्यंत सुंदर, भावात्मक और मार्मिक कविताएँ लिख डाली हैं।

प्रसाद के इस काव्य में अनुभूति के साथ कल्पना का वैभव भी तो है। अतीत जीवन का विलास, वर्तमान जीवन के अभाव, और जीवन की कठिनाइयों के साथ समझौता—इतना कुछ प्रसाद के व्यक्तिगत अनुभव में था। प्रिय उनकी कल्पना की उपज है जिसके माध्यम से वे अपना सुख-दुःख व्यक्त कर सके। 'आँसू' में विलास-मय जीवन की स्मृतियाँ हैं जब कि—

'मधु राका मुसकाती थी'
'माधवी-कुंज-छाया मे'।
'मानिक-मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली?'
'विद्रुम सीपी सम्पुट में
मोती के दाने कैसे?'

'हिलते द्रुम-दल कल किसलय
देती गलबाँही डाली
फूलों का चुम्बन, छिड़ती
मधुपों की तान निराली।'
'मन-मंदिर पर बरसाता
कोई मुक्ता की ढेरी।'
'मणि-दीप लिये निज कर में
पथ दिखलाने को आये।'

यह भी संभव है कि 'आँसू' लक्ष्मी के वियोग की, इस सारे वैभव-ऐश्वर्य के नष्ट हो जाने की कहानी और उसी की स्मृति मे लिखा

गया काव्य है। यह प्रिय धन ही हो सकता है जिसका इतना मोहक मादक सौन्दर्य था। जो कभी था, अब न जाने कहाँ चला गया। यह भी नियति का खेल था।

नचती है नियति नटी सी
कन्दुक क्रीडा सी करती
इस व्यथित विश्व आँगन में
अपना अमृत मन भरती।

इसी नियतिवाद ने प्रसाद को सहनशक्ति दी, आत्मबल दिया और वे उभरे इस व्यथा से। उनकी व्यक्तिगत अनुभूति जीवन-दर्शन में परिणत हुई और जिन आँसुओं को वे प्रिय की स्मृति में बहाते थे, उन्हें विश्व-कल्याण में नियोजित किया। निराशा के पंक से कल्याण का पंकज निकला। 'आँसू' की भावना व्यक्ति से उठ कर समष्टि तक व्याप्त हो गई। वेदना, सहानुभूति और करुणा की यह स्वाभाविक परिणति है। हिन्दी साहित्य में प्रसाद का वेदनावाद बौद्धों के दुःखवाद का ही काव्यात्मक रूप है जिसकी तह में मानव-हितैषिता की भावना प्रधान है। अन्तर यह है कि बौद्धों के दुःखवाद से वैराग्य की स्फूर्ति हुई, प्रसाद ने अपने वेदनावाद से जगदनुराग को जाग्रत किया। बौद्ध निवृत्ति-मार्ग पर चले, प्रसाद प्रवृत्ति-मार्ग पर।

यह बात विशेषतः उल्लेखनीय है कि 'आँसू' के पूर्वार्द्ध में जहाँ 'मै' की प्रधानता है, वहाँ उत्तरार्द्ध में 'मैं' शब्द ही नहीं मिलता। प्रसाद का 'अहं' विश्वात्मा में लीन हो गया है। इसी प्रसंग में आचार्य विनयमोहन शर्मा का एक वक्तव्य उद्धृत कर देना उपयुक्त होगा—

"आँसू में मानव-जीवन का व्यक्ति का समष्टि की ओर विकास भी दिखलाई देता है। पहले हम भौतिक सौन्दर्य की ओर एकदम

खिंच जाते हैं, उसी को परमात्मा मान लेते हैं—स्वर्ग और परलोक की सारी कल्पनाओं का उसी में आरोप कर देते हैं। उसकी आराधना में ही हम सब कुछ भूल जाते है। हमारी दुनिया 'दो' ही में समा जाती है। परन्तु जब भौतिक सुख छिन जाता है, तो हम पहले तो उसकी याद में तड़पते हैं, रोते हैं, आशा-निराशा में उतराया करते है, और फिर ज्यों-ज्यों उसके अप्राप्य बनते रहने की सम्भावना बढ़ती जाती है, हमारी मोह-निद्रा टूटती जाती है। हम वस्तु-स्थिति को पहचानते है और अपनी सहृदयता को अपनी ही ओर केन्द्रित न रख कर संसार में बिखेर देते हैं। लोक-कल्याण में हम अपने जीवन का अन्तिम ध्येय अनुभव करने लगते हैं। दूसरे शब्दों में 'आँसू' में पहले उठते यौवन की मादकता—बेचैनी, फिर प्रौढ़ता का चिन्तन और अन्त में ढलती आयु का निर्वेद दिखाई देता है।"

'आँसू' एक गीति-काव्य है, अतः अन्तर्वेदना इसकी प्रमुख विशेषता है। इसमें मानवीय भावनाओं की प्रधानता है। तो भी बाह्य वर्णन यत्र-तत्र मिल जाते हैं। प्रकृति को प्रतीक-योजना में और उद्दीपन रूप में विशेषतः लाया गया है। अधिकतर उपमान प्रकृति से लिये गये हैं। एक जगह रात का थोड़ा सा वर्णन हुआ है और यह है भी कलापूर्ण।

तुम स्पर्शहीन अनुभव सी,
नंदन-तमाल के तल से।
जग छा दो श्याम-लता सी
तन्द्रा पल्लव विह्वल से।
सपनों की सोनजुही सब,
बिखरें ये बन कर तारा।

सित-सरसिज से भर जावे
वह स्वर्गङ्गा की धारा। इत्यादि

नख-शिख-वर्णन में रीतिकाल का प्रभाव तो है, पर इसमें भी प्रसाद की मौलिकता दिखाई दे जाती है।

इस काव्य की सब से अधिक नवीनता इसकी अभिव्यक्ति में है। 'चित्राधार' में भी 'आँसू' शीर्षक से एक कविता थी—

आवे इठलात जलजात-पात के-से बिंदु,
कैधों खुली सीपी माहि मुकता दरस है;
कढ़ी कुंज-कोप तें कलोलिनि के सीकर ते,
प्रात हिमकन से न सीतल परस है।
देखे दुःख दूनो उमगत अति आनन्द सो,
जान्यो नहीं जाय याहि कौन सो हरस है;
तातो-तातो काढ़ि रूखे मन को हरित करै,
ए रे मेरे आँसू ये पीयूष ते सरस है।

परन्तु तब के आँसू और अब के आँसू में कितना अन्तर है। प्रसाद-काव्य के विकास का यही रहस्य है। अब के आँसू के पीछे जो करुणा, जो भावना है, तब वह कहाँ थी?

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में विस्मृति सी छाई।
दुर्दिन मे आँसू बनकर
वह आज बरसने आई।

इस 'आँसू' में आ कर

कालिन्दी बही प्रणय की इस तममय हृदय-पुलिन में।

यह 'आँसू' एक प्रौढ़ कलाकृति है, और कला सब के लिए सर्वदा सुलभ और सुगम होती नहीं। इसकी पद्धति हिन्दी पाठक के

लिए अपरिचित है। अनेक प्रतीक अस्पष्ट हैं।

छिप गईं कहाँ छूकर वे
मलयज की मृदुल हिलोरें।

इसका अर्थ हुआ कि वे सुख के दिन नहीं रहे।

उच्छ्वास और आँसू में
विश्राम थका सोता है।

इसका तात्पर्य है कि अब उच्छ्वास और आँसू ही मेरे लिए विश्राम हैं।

छिल छिल कर छाले फोड़े
मलमल कर मृदुल चरण से।

इसमें प्रिय की निष्ठुरता की ओर संकेत है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति की प्रेरणा उर्दू ग़ज़लों से मिली जान पड़ती है। 'आकाश छीनता सुख को' भी उर्दू में नियतिवाद के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हिन्दी साहित्य में यह एक नया प्रयोग था। इसीलिए इसे दुरूह और दुर्बोध बताया गया। लेकिन आज हम प्रसाद के प्रतीकों की लाक्षणिकता को जान गये हैं, 'आँसू' हमारे लिए अत्यंत सरल, सरस और सुन्दर बन गया है। सम्पूर्ण काव्य मृदुल शब्दों, मधुर ध्वनियों, कलात्मक अभिव्यंजनाओं और प्रभावोत्पादक उक्तियों से भरा-भरा जान पड़ता है।

---

५. नाटकों के गीत

'झरना', 'लहर' और 'आँसू' के गीतों का परिचय दिया जा चुका है। रचनाकाल की दृष्टि से लगभग इन्हीं के समानान्तर प्रसाद के वे गीत हैं जो नाटकों में उपलब्ध होते हैं। ये गीत प्रसाद-काव्य के अभिन्न अंग और हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। कुछ गीत तो काव्यकला की दृष्टि से इतने सुंदर हैं कि काव्य-संग्रहों में ढूँढ़े से भी न मिलेंगे। इसीलिए इस प्रकरण में अलग से प्रसाद के नाटकों के गीतों पर विचार करना आवश्यक समझा गया है।

इन गीतों का पहला गुण यह है कि 'विशाख' से 'ध्रुवस्वामिनी' तक पहुँचते-पहुँचते हमें इनसे प्रसाद के पूरे काव्य-जीवन का क्रमिक विकास मिल जाता है। दूसरे, ये गीत प्रसाद-काव्य की सभी प्रवृत्तियों और विचार-धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। तीसरे, ये ससंदर्भ हैं। प्रसंग के बीच में आ जाने से इनकी अभिव्यंजना स्पष्ट हो जाती है, इसी से ये मुक्तक कविताओं की अपेक्षा अधिक सरल और सरस लगते हैं। चौथे, प्रेम के क्षण अथवा किसी अन्य भावना की स्थिति सामने होने से इनकी भावुकता और प्रभावोत्पादकता प्रत्यक्ष और निश्चित हो जाती है। भावप्रवणता, संगीतात्मकता

और कला-सौष्ठव की दृष्टि से नाटकीय गीत अधिक सफल कहे जा सकते हैं। नाटकों के अन्त में जो स्वरलिपियाँ दी गई हैं उनसे प्रमाणित होता है कि प्रसाद ने संगीतकला की कसौटी पर परख कर इनकी लय का संगठन किया था।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ गीत ऐसे भी हैं जो कथा-प्रसंग के अनुकूल नहीं हैं—उनका पूर्वापर वार्ता से सम्बन्ध निश्चित नहीं होता। ऐसा लगता है कि प्रसाद के पास फुटकर गीत थे जिनको जबरदस्ती किसी-न-किसी जगह बिठा देने का प्रयत्न किया गया है। कुछ गीत पहले पत्र-पत्रिकाओं में मुक्तक रूप में प्रकाशित हो गये थे, नाटकों में यथावसर बाद में मिला लिये गये है। कुछ अगेय पद्य भी नाटकों में हैं। ऐसे पद्य प्रायः इतिवृत्तात्मक और नीरस हैं। उदाहरण—

बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह भरा इनके मन में ;
कुल-लक्ष्मी हो मुदित, भरा हो मंगल सबके जीवन में।
बन्धुवर्ग हों सम्मानित, हों सेवक सुखी, प्रणत अनुचर ;
शान्तिपूर्ण हो स्वामी का मन, तो स्पृहणीय न हो क्यों वह घर।

(अजातशत्रु नाटक)

उत्तरकालीन नाटकों में गेय कविताएँ अधिक हैं। गीतों की कुल संख्या १०० के लगभग है।

गीत गाने वाले कई तरह के पात्र हैं। प्रायः प्रत्येक नाटक में एक-न-एक युवती ऐसी है जो गानप्रिय है। गाये बिना वह रह नही सकती—गाना उसके स्वभाव का एक लक्षण है। अकेले में आत्म-सुख के लिए और दूसरों के सामने मनोरंजन के लिए अथवा भावावेश में वह गाने लग जाती है। बहुधा प्रेमिकाएँ गीत गाने वाली है। पुरुष पात्रों में से कुछ ही प्रेमियो ने गीत गाये हैं। अन्य पुरुष गायकों में है साधु-संन्यासी और कवि। कहीं-कही तो उपदेश भी

गीतों में मिलते हैं। कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनके लिए गायन जीविका का एक साधन है जैसे राजनर्तकियाँ। वे राजदरबारों में, रनिवासों में और विशेष समारोहों में गीत गाती हैं।

नाटकों के गीतों के विषय विविध हैं—प्रेम, प्रकृति, जीवन-दर्शन, दुःखवाद, करुणावाद, क्षणभंगुरतावाद, आनन्दवाद, ईश-स्तुति, प्रार्थना, उपदेश, उद्‌बोधन, चेतावनी, वस्तु-वर्णन, इत्यादि। प्रणय-गीतों की संख्या सब से अधिक है—प्रसाद प्रमुखतः प्रेम के व्याख्याता और गायक हैं। उपदेश आरंभिक नाटकों में अधिक हैं; एक घूँट, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त और ध्रुवस्वामिनी में उपदेशात्मक गीत नहीं हैं। धीरे-धीरे दार्शनिक विचार भी आने लगे हैं। गीतों में जीवन की अनेक स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। राष्ट्र-भावना कुछ बाद में आई है। राष्ट्रीय गीत बहुत थोड़े हैं, पर हैं बड़े ओजपूर्ण और सुगठित।

प्रणयगीतों में आरम्भ में इतिवृत्तात्मकता, उर्दू अथवा थियेटरी धुन का अनुकरण, आवेश और असंयम, मिलन और आकर्षण की तीव्र चाह, एवं बाह्य रूप-छवि का वर्णन मिलता है—उनमें विरह-वर्णन उच्चकोटि का नहीं है। लेकिन ऐसे गीत बहुत कम हैं। प्रायः गीतों में शृंगारी अशुचिता नाममात्र भी नहीं है। कुछ गीतों में रहस्यवादी संकेत भी मिलते हैं। निराशा, व्यथा और करुणा का चित्रण अधिक मार्मिक और भावपूर्ण है। जिन गीतों में वासना की प्रबलता, यौवन की मादकता अथवा प्रणय की प्रखरता है, वे काव्य-कला की दृष्टि से प्रायः साधारण हैं। जैसे—

—अकेली छोड़ कर जाने न दूँगी।
—मेरे मन को चुरा के कहाँ ले चले
मेरे प्यारे मुझे क्यों भुला के चले।

(विशाख नाटक)

—आओ हिये में प्राण-प्यारे।

(अजातशत्रु नाटक)

वाद में भाव की परिष्कृति के साथ भाषा और कला भी निखरती गई है। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' के प्रणयगीत बहुत प्रवाहपूर्ण और सरस वन पड़े है।

'विशाख' में गीतों की वहुत भरमार है। प्रायः सभी पात्र गीत गाते मिलते हैं। 'अजातशत्रु' और 'स्कंदगुप्त' में भी गीत कुछ अधिक हैं; पर भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से वे 'विशाख' के गीतों से अधिक सुंदर और काव्यात्मक हैं। 'एक घूँट' और 'ध्रुव-स्वामिनी' में सब से कम गीत हैं।

'विशाख' में ३२ गीत हैं। ४-४ पंक्तियों के छोटे-छोटे गीत काफी हैं। तृष्णा, दुःख, करुणा आदि विषयों पर निवंधात्मक गीत हैं। प्रेम की कई स्थितियाँ वर्णित हुई हैं। भावों की सूक्ष्मता कम है। उर्दू और बँगला का प्रभाव यत्र-तत्र दिखाई देता है। थियेटरी धुन की प्रचुरता खटकती है।

'राज्यश्री' में ७ गीत हैं। इनमें प्रेम-संवंधी गीत—'आशा विकल हुई है मेरी', और 'सम्हाले कोई कैसे प्यार'—अच्छे कहे जा सकते हैं। उपदेशों और प्रार्थनाओं में थियेटरी प्रभाव है।

'अजातशत्रु' में २१ कविताएँ हैं जिनमें कम-से-कम १५ गीत हैं। थियेटरी ढंग के पद्य तीन-चार हैं। प्रणय-गीतों में 'वहुत छिपाया उफन पड़ा अव' और 'निर्जन गोधूली प्रान्तर में' उत्कृष्ट हैं। दो छायावादी गीत 'अलका की किस विकल विरहिणी', और 'चल वसन्त वाला' अपनी कोटि के सर्वोत्तम गीत हैं। 'अजातशत्रु' से प्रसाद की गीत-शैली में एक नया मोड़ आता है। लेकिन 'कामना' में जो ८ गीत हैं उनका स्तर वहुत ऊँचा नहीं है। हो सकता है कि यह नाटक लिखा पहले गया हो और प्रकाशित वाद में हुआ हो। इसमें

यौवन है क्षण भर रुकने वाले पथिक की तरह। (ध्रुवस्वामिनी नाटक)
इसीलिए कवि कहता है—

आज मधु पी ले यौवन वसन्त आया।

जिस प्रकार वसन्त में कोकिल आनन्द-विभोर हो कलरव करता है, रसाल मंजरित हो कर खिल उठता है, सुरभित समीर प्रेमियों को अधीर कर देता है, और मधुप मुकुल से मिलता है, उसी प्रकार हे प्रेमी, तू भी यौवन-वसन्त का आनन्द ले ले। (विशाख नाटक)
यौवन और वसन्त प्रेम की मादकता को बढ़ाते हैं। प्रकृति में उन्माद भरा है। चला है मन्थर गति से पवन रसीला नन्दन कानन का। फूलों पर मँडराने वाले भौंरे, मस्ती में खिला कमल, सब मादकता से भरे हैं। मदमत्त हो जाने पर उचित-अनुचित की भूल नहीं सूझती।
(अजातशत्रु नाटक)

सखियाँ मानिनी से आग्रह करती हैं कि ऐसी मधुमय ऋतु में तू भी हठ छोड़ कर अपने प्रियतम के संग प्रकृति का सुख लूट ले।

डाल दे गलबांही का जाल,
हृदय में भर ले प्रेम उमंग। (जनमेजय का नागयज्ञ)

आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा।

मधु पी कर पागल हुआ करता प्रेम प्रलाप
शिथिल हुआ जाता हृदय जैसे अपने आप।

कामनाएँ खिल रही हैं। रात छवि से मतवाली हो रही है, चाँदनी बिछली पड़ती है और—

कहती कम्पित अधर से बहकाने की बात।

हृदय अब लाज की सीमा में नहीं रह सकता। वासना का बाँध टूट जाता है। (चन्द्रगुप्त नाटक)

यौवन के घन के रसकण बरस रहे हैं और लाज से भरा सौन्दर्य मौन है। आँखों में यौवन का नशा है, और है—

लिखा गया है और एक में करुणावाद है। ये सभी गीत प्रशंसनीय हैं।

प्रायः कवियों ने कहा है कि प्रेम एक आग है। प्रसाद कहते हैं कि प्रेम अमृत है। प्रेम वह हाला है जो मन को मतवाला कर देती है। प्रकृति में मधुप फूलों का सानन्द रसपान करते हैं। तारामंडली के लिए चन्द्रमा का चषक भरा है। तू भी पी ले—

भर ले जीवन-पात्र में यह अमृतमय हाला। (कामना नाटक)

प्रेम-मिलन में जगत् का सन्ताप खो जाता है। इस मधुर कुंज में पेड़ और लतिकाएँ गले मिलती हैं (एक घूँट)। प्रेम वह कल्पतरु है जो श्रद्धा-सरिता के कूल पर खड़ा है। आओ, स्नेह से मिलो। अविश्वास को हृदय से निकाल दो। छवि-रस-माधुरी पी कर जीवन-वेलि सींच लो और सुख से जियो।

(स्कन्दगुप्त नाटक)

प्रेम सौन्दर्यानुभूति का दूसरा नाम है। सौन्दर्य शाश्वत आनन्द का कारण है। छवि की किरणें बिखर रही हैं, इनमें खिल, सौन्दर्य-सुधा-सीकर से सिक्त हो जा।

अमृत-झड़ी सुख से झिल जा तू।

लोक-लाज का बन्धन तोड़ सौन्दर्य का उपभोग कर ले। (एक घूँट)

हमारे वक्ष मे वन कर हृदय, यह छवि समायगी

तभी दो हृदयों की चेतना एक हो जायगी। (अजातशत्रु नाटक)

प्रेम दो हृदयों को मिलाता है। 'हमारा जीवन का उल्लास, हमारे जीवन-धन का रोष', सब एक हो जाता है। प्रिय के सौन्दर्य को देख कर शान्ति मिलती है।

हमारी करुणा के दो बूँद मिले एकत्र, हुआ सन्तोष।

(अजातशत्रु नाटक)

यौवन जब आता है तो अपने साथ प्रेमरस भी लाता है पर

प्रेम-गीतों की अधिकता है। इस नाटक में अन्तिम बार थियेटरी तर्ज़ के गीत आये हैं। बाद के नाटकों में प्रसाद की मौलिकता, नवीनता और स्वाभाविकता निखर आई है। 'कामना' के गीतों में 'घिरे सघन घन नींद न आई' सर्वोत्तम है, शेष गीत निष्प्राण-से जान पड़ते हैं।

'जनमेजय का नागयज्ञ' से प्रसाद की गीतशैली में मृदुता और तरलता दिखाई देने लगती है। उनके चिन्तन में गम्भीरता, वेदना में कसक, करुणा में प्रवाह, और अभिव्यक्ति में स्पष्टता आ गई है। गीत पहले से लम्बे हैं और उनके विषय अनेक हैं—प्रार्थना, प्रेम, उपदेश, जीवन-दर्शन, राष्ट्रीयता। इस नाटक में १० गीत हैं। 'स्कंदगुप्त' की नाटकीय कला जितनी सुंदर और सफल है उतनी गीत-कला नहीं है। गीतों में मुख्य भावना प्रेम की है। १७ गीतों में 'आह वेदना मिली विदाई' और 'न छेड़ना उस अतीत स्मृति के तार' उत्कृष्ट गीत हैं।

'चन्द्रगुप्त' के गीत प्रायः बहुत ही सफल और सरस हैं। इनकी भावना सुकोमल और सौंदर्यानुभूति पुष्ट है। 'तुम कनक किरण के अन्तराल में' और 'आज इस यौवन के माधवी कुंज में' भावप्रवणता की दृष्टि से उत्कृष्ट गीत हैं। 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और 'हिमाद्रि तुंग शृंग से' हिंदी के राष्ट्रगीतों में सर्वोत्तम माने गये हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में कुल १४ गीत हैं।

'एक घूँट' में चार गीत है—चारों सुन्दर। गीति-तत्त्व की दृष्टि से 'जलधर की माला' दुःखवादी गीतों में, और 'जीवन वन में उजि-याली है' प्रेम-गीतों में अपना उच्च स्थान रखते है। 'एक घूँट' में प्रगतिशील विचारधारा मिलती है।

'ध्रुवस्वामिनी' में भी चार गीत हैं। चारों का विषय भिन्न है। एक प्रेम-गीत है, एक वीरगीत, एक यौवन की क्षणभंगुरता पर

अधरों के मधुर कगारों में
कलकल ध्वनि की गुञ्जारों में
मधुसरिता-सी यह हँसी।

मौन रहने से क्या सौंदर्य का वैभव लुक-छिप सकेगा ?

(चन्द्रगुप्त नाटक)

प्रेम का उदय होता है तो आरंभ में वासना रहती है। प्रेम तो अंग-अंग से प्रगट होने लगता है।

छिपाओगे कैसे आँखें कहेंगी। (कामना नाटक)

सखा-सखियों से लाख दुराव किया जाय, आँखों के नुकीले तीर बता देते हैं कि घायल की क्या दशा है।

बज रही वंशी आठों याम की।

इस काम की वंशी की धुन कानों में गूँजती रहती है। उसकी रूप-सुधा दृग-प्यालों में भरी रहती है। (चन्द्रगुप्त नाटक)

प्रेम आत्मदान माँगता है। प्रेमी कहने लगता है—

अमृत हो जायेगा विष भी पिला दो हाथ से अपने।

सारे जगत् से बेसुध हो कर वह अपने मधुर रूप के सपने देखने लगता है।

जगत् विस्मृत हृदय पुलकित लगा वह नाम है जपने।

(अजातशत्रु नाटक)

एक प्रेमिका की आकांक्षा है कि

अगरु धूम की श्याम लहरियाँ उलझी हों इन अलको में।

मेरे हृदय में बिजली हो, बरुनी में आँसू, अधर में प्रेम-प्याला, जीवन में व्याकुलता, जीवन-तम में तुम्हारी छवि का प्रकाश, साँसों में धड़कन और अनुनय में दीनता। फिर चाहे तुम ठुकराओ चाहे प्यार करो।

सब कुछ खो देने के बाद यदि प्यार भी न रहे तो प्रेमी का सर्व-

यौवन है क्षण भर रुकने वाले पथिक की तरह। (ध्रुवस्वामिनी नाटक)
इसीलिए कवि कहता है—

आज मधु पी ले यौवन वसन्त आया।

जिस प्रकार वसन्त में कोकिल आनन्द-विभोर हो कलरव करता है, रसाल मंजरित हो कर खिल उठता है, सुरभित समीर प्रेमियों को अधीर कर देता है, और मधुप मुकुल से मिलता है, उसी प्रकार हे प्रेमी, तू भी यौवन-वसन्त का आनन्द ले ले। (विशाख नाटक)
यौवन और वसन्त प्रेम की मादकता को बढ़ाते हैं। प्रकृति में उन्माद भरा है। चला है मन्थर गति से पवन रसीला नन्दन कानन का। फूलों पर मँडराने वाले भौरे, मस्ती में खिला कमल, सब मादकता से भरे हैं। मदमत्त हो जाने पर उचित-अनुचित की भूल नहीं सूझती।
(अजातशत्रु नाटक)

सखियाँ मानिनी से आग्रह करती हैं कि ऐसी मधुमय ऋतु में तू भी हठ छोड़ कर अपने प्रियतम के संग प्रकृति का सुख लूट ले।

डाल दे गलबांही का जाल,
हृदय मे भर ले प्रेम उमंग। (जनमेजय का नागयज्ञ)

आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा।
मधु पी कर पागल हुआ करता प्रेम प्रलाप
शिथिल हुआ जाता हृदय जैसे अपने आप।

कामनाएँ खिल रही हैं। रात छवि से मतवाली हो रही है, चाँदनी बिछली पड़ती है और—

कहती कम्पित अधर से बहकाने की बात।

हृदय अब लाज की सीमा में नहीं रह सकता। वासना का बाँध टूट जाता है। (चन्द्रगुप्त नाटक)

यौवन के घन के रसकण बरस रहे हैं और लाज से भरा सौन्दर्य मौन है। आँखों में यौवन का नशा है, और है—

अधरों के मधुर कगारों में
कलकल ध्वनि की गुञ्जारों में
मधुसरिता-सी यह हँसी।

मौन रहने से क्या सौंदर्य का वैभव लुक-छिप सकेगा ?

(चन्द्रगुप्त नाटक)

प्रेम का उदय होता है तो आरंभ में वासना रहती है। प्रेम तो अंग-अंग से प्रगट होने लगता है।

छिपाओगे कैसे आँखें कहेंगी। (कामना नाटक)

सखा-सखियों से लाख दुराव किया जाय, आँखों के नुकीले तीर बता देते हैं कि घायल की क्या दशा है।

बज रही वंशी आठों याम की।

इस काम की वंशी की धुन कानों में गूँजती रहती है। उसकी रूप-सुधा दृग-प्यालों में भरी रहती है। (चन्द्रगुप्त नाटक)

प्रेम आत्मदान माँगता है। प्रेमी कहने लगता है—

अमृत हो जायेगा विष भी पिला दो हाथ से अपने।

सारे जगत् से बेसुध हो कर वह अपने मधुर रूप के सपने देखने लगता है।

जगत् विस्मृत हृदय पुलकित लगा वह नाम है जपने।

(अजातशत्रु नाटक)

एक प्रेमिका की आकांक्षा है कि

अगरु धूम की श्याम लहरियाँ उलझी हों इन अलकों में।

मेरे हृदय में बिजली हो, बरुनी में आँसू, अधर में प्रेम-प्याला, जीवन में व्याकुलता, जीवन-तम में तुम्हारी छवि का प्रकाश, साँसों में धड़कन और अनुनय में दीनता। फिर चाहे तुम ठुकराओ चाहे प्यार करो।

सब कुछ खो देने के बाद यदि प्यार भी न रहे तो प्रेमी का सर्व-

नाश ही है। 'सम्हाले कोई कैसे प्यार।' यह तो बड़ा चंचल है, मचल-मचल जाता है। 'छुई-मुई' की तरह झट से कुम्हला जाता है और झट से खिल उठता है।

कितना है सुकुमार
लिए व्यथा का भार। (राज्यश्री नाटक)

निर्मोही के प्रेम का क्या ठिकाना! मानस में प्रणय की बाढ़ है। स्नेह की नाव हलके डाँड़ों से चलाई जा रही है। देखिए लगती है किस कूल पर, बस्ती है या उजाड़! (विशाख नाटक)

प्रेमी चाहता है कि प्रिय को हृदय में बिठा लूँ, कहीं कोई ले न जाय, कहीं यह भाग न जाय।

आओ हिये में अहो प्राण-प्यारे
सब को छोड़ तुम्हें पाया है
देखूँ कि तुम होते हो हमारे। (अजातशत्रु नाटक)
अकेली छोड़ कर जाने न दूँगी (विशाख नाटक)

निर्मोही की प्रीति में सारी उम्र का रोना है।

जब दूर हो गया मन से (विशाख नाटक)

तो फिर प्रेम अग्निमय हो जाता है।

प्यारे, हम पतंग की तरह तुम्हारी प्रेमाग्नि में जलते है, तुम हमारी प्रेमलता के लिए विषम पवन मत बनो। रूप अब ज्वाला बन गया जिसमें मन-पतंग जलता है। सच है मृदुता के पीछे निष्ठुरता होती ही है। (विशाख नाटक)

मधुप कब एक कली का है?

कली-कली का रस लेता फिरता है। काँटों में पड़ी कुसुम-कली तो रंगरलियों की प्रतीक्षा में मर रही है, पर हरजाई मधुप कभी मल्लिका के, कभी सरोजिनी और कभी जूही के पुंज में क्रीड़ा करता फिरता है।

(चन्द्रगुप्त नाटक)

स्नेहहीन !

सर्वस्व ही हमने था दिया

तुम देखने को तरसाने लगे । (राज्यश्री नाटक)

अब तो दोनों के बीच में खाई है, मिलन कैसे हो ?

पर यह कैसे होगा कि हम प्यार करें और वह उपेक्षा करे।

हे प्रिय !

बहुत छिपाया उफन पड़ा अब ;

मेरा प्रेम अब आग की तरह चमक उठा है। चाँद के बिना आकाश की तरह मेरा हृदय शून्य है, और तुम...तुम कोकिला अथवा पपीहा की पुकार न सुनने वाले बादल की तरह निष्ठुर हो। आओ, तुम्हारे वास के लिए हृदय-कुटी स्वच्छ कर दी है। तुम्हारे स्वागत के लिए पलक-पाँवड़े बिछा दिये हैं। (अजातशत्रु नाटक)

हे मेरे चन्द्र !

सुधा सीकर से नहला दो

रूप-राशि इस व्यथित हृदय सागर को बहला दो।

मेरे अन्तर् के अन्धेरे को उज्ज्वल कर दो। अपनी मृदुवाणी से पूर्णिमा ला दो और मेरे अंचल पर जो आँसू बिखरे हैं

ये मोती बन जाँय, मृदुल कर से लो सहला दो।

(चन्द्रगुप्त नाटक)

हृदय-समुद्र में हलचल मची है। उसमें लहरियाँ उठती हैं।

शून्य गगन मे खोजता जैसे चन्द्र निराश

स्वाती की आस में मुँह खोले सीपी की तरह जीवन प्यासा है। आओ। (स्कन्दगुप्त नाटक)

प्रथम यौवन मदिरा से मत्त

मैंने तुम्हें बिना पहचाने अपना अमोल हृदय बेच डाला। अपनापन खोकर मैं ने तुम्हें चाहा। इसके बदले में तुम से दुःख मिला। ओ

बेपरवाह ! तुम्हारे आने के लिए मैं ने हृत्पथ की धूल को आँसुओं का छिड़काव करके बिठा दिया है। (चन्द्रगुप्त नाटक)

प्यारे ! देखो तो 'अस्ताचल पर युवती संध्या' छा रही है। पहाड़ियों ने झीलों की रत्नमयी प्यालियाँ भर दीं। तरु वल्लरियों को चूमने के लिए झुक पड़े। ऐसे में तो आ जाओ। मानिनियों का रुष्ट हृदय पिघलने लगा। वसुधा मदमाती हुई।

सब झूम रहे अपने सुख में

तुमने क्यों बाधा डाली है ? (ध्रुवस्वामिनी नाटक)

घिरे सघन घन नींद न आई

सामने अन्धकार है, आलोक दिखाई नहीं देता क्योंकि वह निर्दय नहीं आया। प्रेमरस बरस गया, पर मन अभी कुम्हलाया है। हृदय में प्यास भरी है। (कामना नाटक)

प्रिय नहीं आ रहे, आँखें प्यासी हैं। कुछ प्रणय-अवधि शेष है; इसी से आशा बनी है। परन्तु, यदि प्रकृति मेरे स्वर में स्वर नहीं मिला सकती तो मेरे गान को रूपनिशा के अन्त में कौन सुनेगा ? (चन्द्रगुप्त नाटक)

जीवन नदी में लहरें उठ रही हैं, पतवार पुराना है, पवन ज़ोर से चल रहा है। काली रात है, सब सुनसान है और बेड़ा नदी के बीच में पड़ा है। ऐसे में भी कहीं से आशा की झलक दिखाई नहीं देती। (विशाख नाटक)

तुम्हारी स्मृति से रग-रग में एक बिजली सी दौड़ जाती है।

भावनिधि में लहरियाँ उठतीं तभी।

मलयज का एक झोंका लग जाय तो कलिका खिल जाय।

नील नीरद, क्या न बरसोगे कभी ? (स्कन्दगुप्त नाटक)

निर्जन गोधूली प्रान्तर में खोले पर्णकुटी के द्वार

एक प्रेमिका अपने प्रिय की प्रतीक्षा कर रही है—अलस अकम्पित

आँखों से। आहें निकल रही हैं, आँसू वह रहे हैं, हृदय में द्वन्द्व है कि वे आयेंगे या नहीं आयेंगे। उसे लगता है कि जिसकी प्रतीक्षा थी, वह तो भूल ही गया। अब उसके सामने अन्धकार है।

(अजातशत्रु नाटक)

जीवन-वन में उजियाली है

किरनों में अनुराग है, किन्तु मेरा हृदय शून्य है। इसमें वेदना भरी है। यह समीर भी कुसुम-बाला से मधु पा लेता है, परन्तु मैं हूँ कि प्रेम-मधु की प्यास नहीं जाती। (एक घूँट)

वरुणालय चित्त शान्त था

शैशव में कितनी सुषमा थी, कितना मुद-मंगल था। लेकिन जब से उसने साथ छोड़ दिया, अतृप्ति और अन्धकार ने हृदय को अपना नीड़ बना लिया है। भविष्य का कुछ पता नहीं। चित्त चंचल हो रहा है, इसका क्या करूँ। (विशाख नाटक)

संसृति के वे सुन्दरतम क्षण

मेरे यौवन के सपने सब बिखर गये। एक समय चपल भौंहें चली थीं, प्रेम का प्याला छलका था। वह जो लहर थी अब लीन हो गई। कभी भूल कर ही आ जाओ तो सुख का सागर फिर हिलोरें लेने लगे। (स्कन्दगुप्त नाटक)

आशा विकल हुई है मेरी...
सिसक रही घायल दुखियारी।
...ध्वनि सुन न पडी नवघन की रे
प्यास बुझी न कभी मन की रे। (राज्यश्री नाटक)

निराशा का अन्धकार कभी इतना बढ़ जाता है कि ऐसे में मृत्यु ही दुःख की कृतान्त जान पड़ती है। एक प्रेमिका विरह-व्यथा से घबरा उठी है—

आह वेदना मिली विदाई

प्रेम आध्यात्मिक और रहस्यवादी स्तर तक पहुँचा है। उदाहरण—

भरा नयनों में मन मे रूप
किसी छलिया का अमल अनूप।

उसी छलिया की छवि सर्वत्र (जल, थल, मारुत, व्योम में) समायी है। वह मेरा जीवन-प्राण धूप-छाँह खेलता फिरता है।

(स्कन्दगुप्त नाटक)

'शून्य गगन में खोजता जैसे चंद्र निराश' में भी रहस्यवादी संकेत है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के 'बज रही वंशी आठों याम की' से भी रहस्यवादी अर्थ लिया जा सकता है। सुवासिनी अनन्त निधि के नाविक को पुकारती है।

यह कह देना बहुत आवश्यक है कि नाटकीय गीतों में छायावादी या रहस्यवादी संकेत बहुत ही कम हैं—ये गीत वादमुक्त हैं।

प्रसाद की आरम्भिक कृतियों में अनेक प्रार्थनायें मिलती हैं जिनमें जनकल्याण की कामना की गई है। 'चित्राधार' और 'कानन-कुसुम' में ऐसी प्रार्थनाओं की काफी अच्छी संख्या है। ऐसी प्राथनायें बहुत ही कम हैं जिनमें व्यक्तिगत दुःख का रोना है। कुछ में केवल ईशस्तुति है। नाटकों में मानवतावादी प्रार्थनायें अधिक हैं। केवल 'राज्यश्री' में एक ईश-स्तुति है और केवल 'विशाख' में एक व्यक्ति-गत प्रार्थना है।

जय जयति करुणा-सिन्धु
जय दीनजन के बन्धु
जय अखिल लोक ललाम
जय जय भुवन अभिराम (राज्यश्री नाटक)

इस भजन की शब्दावली 'चित्राधार' की ब्रजभाषा पद्धति की सी लगती है।

'जनमेजय का नागयज्ञ' में जो स्तुति है उसमें दार्शनिकता की

प्रधानता है।

जय हो उसकी जिसने अपना विश्वरूप विस्तार किया
आकर्षण का प्रेम नाम से सब मे सरल प्रचार किया।
जल थल नभ का कुहक बन गया जो अपनी ही लीला से
प्रेमानन्द पूर्ण गोलक को निराधार आधार दिया।
पूर्णानुभव कराता है जो 'अहमिति' से निज सत्ता का
'तू मैं ही हूँ' इस चेतन का प्रणव मध्य गुंजार किया।

'विशाख' की निम्नलिखित प्रार्थना अधिक सुन्दर है—

हृदय के कोने कोने से
स्वर उठता है कोमल मध्यम, कभी तीव्र होकर भी पञ्चम
मन के रोने से।

....

किन्तु हुआ अब लज्जित हूँ मैं, कर्मफलो से सज्जित हूँ मै
उसके बोने से।

हे भगवन्, मेरा अतीत तुम से छिपा नहीं है, तुम्हीं उद्धार करोगे।

प्रसाद पूरे पक्के आस्तिक थे। वे तो मानते थे कि भक्त के लिए

पालना बनें प्रलय की लहरें।

विपदा में, ज्वाला और आँधी में उस की दया हो, उस पर विश्वास हो तो मनुष्य का दुःख-दर्द कट जाता है।

संसार दुःख का पारावार है, प्रलय मची है। मानवता में राक्षसत्व भर गया है। हे भगवन्, क्या यह हाहाकार तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँचता?

उतारोगे कब भूभार?
क्या अब भी अवतार नहीं लोगे? (स्कन्दगुप्त नाटक)

सुनते है कि जिसने तुम्हें पुकारा उसी की सहायता के लिए पहुँच जाते हो। हमें कैसे विश्वास हो?

मैने भ्रमवश प्रेम लुटा दिया। मेरी यात्रा नीरवता में चलती रही। 'अमित स्वप्न की मधुमाया में' किसी ने 'यह विहाग की तान सुनाई'। आज जीवन के भावी सुख, आशा और आकांक्षा से विदा लेती हूँ।

(स्कन्दगुप्त नाटक)

ओ मेरी जीवन की स्मृति

ओ अंतर के आतुर अनुराग!

तुम कहाँ से जाग पड़े? वह देखो सामने मृत्यु मुँह बाये खड़ी है।

(चन्द्रगुप्त नाटक)

सखे, वह प्रेममयी रजनी

और उसका सुखमय मदिर विलास स्मरण हो आया है जब कि मेरे हृदय में मधुर झनकार होती थी और मैने अपने रूप का आनन्द लूटा था। आज वह सब सपना हो गया।

(चन्द्रगुप्त नाटक)

वह भी एक समय था जब आनन्द भैरवी सुनाई पड़ती थी, जब मघा की फुहार थी और माधवी निशा थी। लेकिन अब सब सूना हो गया।

न छेड़ना उस अतीत स्मृति के

खिंचे हुए वीन तार कोकिल।

कसक रागिनी तड़प उठेगी

सुना न ऐसी पुकार कोकिल। (स्कन्दगुप्त नाटक)

क्योंकि स्मृति से व्यथा फिर भड़क उठती है।

स्मृति उमड़ आने से मन डाँवाडोल हो जाता है। इसलिए

निकल मत बाहर दुर्बल आह।

तड़प कर सो जा शारदीय मेघ की चपला की तरह। प्रेम की मधुर पीड़ा का आस्वादन करती हुई चली चल। जैसे तारे रात का विरह-शृंगार हैं, इसी तरह मेरे अश्रु। वेदने, हृदय ही में बंद रह, पर

उसे झकझोर नहीं। हृदय की धड़कनों को जगा नहीं।

(चन्द्रगुप्त नाटक)

मेरी वेदना इतनी तीव्र है कि जड़ पदार्थ भी इससे विकल हो उठें। अच्छा है कि यह वेदना अप्रकाशित ही रहे क्योंकि प्रगट होने से क्या होगा? (अजातशत्रु नाटक)

ऐसे प्रेम का अन्त कभी आत्महत्या में, कभी वैराग्य में और कभी अपनी नीरस स्थिति के साथ समझौते में होता है।

चढ़कर मेरे जीवन रथ में
प्रलय चल रहा अपने पथ मे
मैने निज दुर्बल पद-तल पर—
उससे हारी होड लगाई। (स्कन्दगुप्त नाटक)

प्रेम से हार खा कर प्रलय की गोद में ही विश्राम मिल सकता है। अथवा

बनी न कुछ इस चपल चित्त की, अखर गया झूठ गर्व जो था
असीम चिन्ता चिता रही है, विटप कँटीले लगाय रोई।
पलट गये दिन सनेह वाले, नहीं नशा, अब रही न गर्मी
न नींद सुख की न रंगरलियाँ, न सेज उजला बिछाय कोई।

(अजातशत्रु)

इन्हीं प्रेम-व्यथाओं में घुल-घुल कर सौन्दर्य, यौवन, प्रेम, सब चुक जाता है।

मधुपान कर चुके मधुप, सुमन मुरझाए
शीतल मलयानिल गया, कौन सिंचवाए?
पत्ते नीरस हो गये सुखा कर डाली।
चलती उपवन में लूह, कहाँ हरियाली।

(विशाख नाटक)

नाटकों में व्यक्ति के प्रत्यक्ष रहते हुए भी, कहीं-कहीं वैयक्तिक

प्रेम आध्यात्मिक और रहस्यवादी स्तर तक पहुँचा है। उदाहरण—

भरा नयनों में मन में रूप
किसी छलिया का अमल अनूप।

उसी छलिया की छवि सर्वत्र (जल, थल, मारुत, व्योम में) समायी है। वह मेरा जीवन-प्राण धूप-छाँह खेलता फिरता है।

(स्कन्दगुप्त नाटक)

'शून्य गगन में खोजता जैसे चंद्र निराश' में भी रहस्यवादी संकेत है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के 'बज रही वंशी आठों याम की' से भी रहस्यवादी अर्थ लिया जा सकता है। सुवासिनी अनन्त निधि के नाविक को पुकारती है।

यह कह देना बहुत आवश्यक है कि नाटकीय गीतों में छायावादी या रहस्यवादी संकेत बहुत ही कम हैं—ये गीत वादमुक्त हैं।

प्रसाद की आरम्भिक कृतियों में अनेक प्रार्थनायें मिलती हैं जिनमें जनकल्याण की कामना की गई है। 'चित्राधार' और 'कानन-कुसुम' में ऐसी प्रार्थनाओं की काफी अच्छी संख्या है। ऐसी प्राथनायें बहुत ही कम हैं जिनमें व्यक्तिगत दुःख का रोना है। कुछ में केवल ईशस्तुति है। नाटकों में मानवतावादी प्रार्थनायें अधिक हैं। केवल 'राज्यश्री' में एक ईश-स्तुति है और केवल 'विशाख' में एक व्यक्तिगत प्रार्थना है।

जय जयति करुणा-सिन्धु
जय दीनजन के बन्धु
जय अखिल लोक ललाम
जय जय भुवन अभिराम (राज्यश्री नाटक)

इस भजन की शब्दावली 'चित्राधार' की ब्रजभाषा पद्धति की सी लगती है।

'जनमेजय का नागयज्ञ' में जो स्तुति है उसमे दार्शनिकता की

प्रधानता है।

जय हो उसकी जिसने अपना विश्वरूप विस्तार किया
आकर्षण का प्रेम नाम से सब में सरल प्रचार किया।
जल थल नभ का कुहक बन गया जो अपनी ही लीला से
प्रेमानन्द पूर्ण गोलक को निराधार आधार दिया।
पूर्णानुभव कराता है जो 'अहमिति' से निज सत्ता का
'तू मैं ही हूँ' इस चेतन का प्रणव मध्य गुंजार किया।

'विशाख' की निम्नलिखित प्रार्थना अधिक सुन्दर है—

हृदय के कोने कोने से
स्वर उठता है कोमल मध्यम, कभी तीव्र होकर भी पञ्चम
मन के रोने से।

....

किन्तु हुआ अब लज्जित हूँ मैं, कर्मफलों से सज्जित हूँ मैं
उसके बोने से।

हे भगवन्, मेरा अतीत तुम से छिपा नहीं है, तुम्हीं उद्धार करोगे।

प्रसाद पूरे पक्के आस्तिक थे। वे तो मानते थे कि भक्त के लिए

पालना बनें प्रलय की लहरें।

विपदा में, ज्वाला और आँधी में उस की दया हो, उस पर विश्वास हो तो मनुष्य का दुःख-दर्द कट जाता है।

संसार दुःख का पारावार है, प्रलय मची है। मानवता में राक्षसत्व भर गया है। हे भगवन्, क्या यह हाहाकार तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँचता?

उतारोगे कब भूभार?

क्या अब भी अवतार नहीं लोगे? (स्कन्दगुप्त नाटक)

सुनते हैं कि जिसने तुम्हें पुकारा उसी की सहायता के लिए पहुँच जाते हो। हमें कैसे विश्वास हो?

हमारे निर्बलो के बल कहाँ हो ?

तुम तो सर्वत्र हो । हमें दुःख-द्वन्द्वों से बचाओ तो हम भी जानें ।

(स्कन्दगुप्त नाटक)

नाथ, स्नेह की लता सींच दो

शान्ति की वर्षा करके । हिंसा की धूल बैठ जाय, जीवन-क्यारी हरी-भरी हो, विश्व में समता की स्थापना हो और तुम्हारी करुणा से यह संसार सुखमय हो । (जनमेजय का नागयज्ञ)

कर रहे हो नाथ, तुम जब, विश्वमंगल कामना,
क्यों रहें चिन्तित हमीं, क्यों दुःख का हो सामना ?

(विशाख नाटक)

बजा दो वेणु मनमोहन !

और हम में स्वातन्त्र्य का मन्त्र फूँक दो । हमारा भय मिटा दो, हमारे जीवन को आनन्दमय कर दो । (स्कन्दगुप्त नाटक)

दीन दुखी न रहे कोई,
सुखी हों सब लोग ।
देश समृद्ध प्रपूरित हो—जनता नीरोग
कूट नीति टूटे जग में—सबमें सहयोग
भूप प्रजा समदर्शी हों—तजकर सब ढोंग । (विशाख नाटक)

दाता, सुमति दीजिए

मनुष्यों के हृदयों में करुणा का संचार करके ज्ञान का बीज अंकुरित कीजिए ।

भगवान् बुद्ध का मत था कि यह संसार क्षणभंगुर है; संसार में दुःख ही दुःख है; करुणा से इस दुःख का निवारण किया जा सकता है । नाटकों के अनेक गीतों में क्षणभंगुरतावाद, दुःखवाद अथवा करुणावाद का स्वर मिलता है ।

चंचल चन्द्र सूर्य है चंचल चपल सभी ग्रह तारा है।
चंचल अनिल अनल जल थल सब चंचल जैसे पारा है।
अणु-परमाणु, दुःख-सुख चंचल क्षणिक सभी सुख साधन है।
दृश्य सकल नश्वर-परिणामी, किसको सुख किसको धन है॥

(अजातशत्रु नाटक)

न धरो कहकर इसको अपना
यह दो दिन का है सपना
वैभव का बरसाती नाला, भरा पहाड़ी झरना।

(अजातशत्रु नाटक)

सब जीवन बीता जाता है
धूप छाँह के खेल सदृश (स्कन्दगुप्त नाटक)
सब छाया की धूप (राज्यश्री नाटक)
घुमड़ रही जीवन घाटी पर जलधर की माला
क्षणिक सुखों पर सतत झूमती शोकमयी ज्वाला। (एक घूँट)

संसारी सुख क्षणिक हैं और यह जीवन दुःखमय है, प्रसाद को इसका बहुत गहरा अनुभव था।

सखी री सुख किसको हैं कहते?
बीत रहा है जीवन सारा केवल दुख ही सहते।
...निर्दय जगत, कठोर हृदय है, और कहीं चल रहते।

(विशाख नाटक)

यही भाव 'लहर' के 'ले चल कहीं भुलावा देकर' में प्रगट हुआ है।

मृत्यु, क्रन्दन, अकरुणा और असफलता सर्वत्र व्याप्त है। अन्याय, लोलुपता और आकांक्षा बढ़ रही है।

मचा है जग भर में अन्धेर।

(विशाख नाटक)

सुखों की क्षणिकता और दुःखों की व्यापकता से कवि घबराते नहीं हैं। वे निर्माण की राह निकाल लेते हैं। यदि सुख क्षणिक हैं, तो दुःख भी तो क्षणिक हैं!

अधीर न हो चित्त विश्वमोहजाल में
...है दुःख का भँवर चला कराल चाल में
वह भी क्षणिक, इसे कहीं टिकाव है नहीं।

(अजातशत्रु नाटक)

दुःख के निवारण का उपाय है भ्रातृभाव, प्रेम, सहानुभूति, जिसका नाम है करुणा।

मना आनन्द मत कोई दुखी है
...न कर तू गर्व औरों को दबाकर
...सुखी संसार है तो तू सुखी है। (विशाख नाटक)

प्रेम और करुणा से बहाया हुआ आँसू दुखिया वसुधा पर शीतलता का संचार करता है। (ध्रुवस्वामिनी नाटक)

करुणा कादम्बिनी बरसे।
दुःख से जली हुई यह धरनी प्रमुदित हो बरसे।
प्रेम-प्रचार रहे जगतीतल दया दान दरसे।
मिटे कलह शुभ शांति प्रकट हो अचर और चर से॥

(राज्यश्री नाटक)

स्वर्ग नहीं दूसरा और

करुणा से भरा संसार ही स्वर्ग है। (अजातशत्रु नाटक)

निष्ठुर आदि सृष्टि पशुओं की विजित हुई इस करुणा से।
मानव का महत्त्व जगती पर फैला अरुणा करुणा से॥

संध्या का रागरंजित अंचल, ऊषा का शुभ्र हास्य, बालक का प्यारा-प्यारा मुखड़ा, ताराओं के ओस कण, मानव का विकासमय जीवन सब करुणा के कारण हैं। (अजातशत्रु नाटक)

यहीं से कवि लोक-कल्याण की भावना का प्रचार करने में लग जाता है। वह मानता है कि भगवान् की अर्चना भी इसी में है कि दीन-दुखियों की सहायता की जाय। बल्कि वह करुणापूर्ण मानव को भी भगवान् मानने को तैयार है।

मान लूँ क्यों न उसे भगवान् ?
नर हो या किन्नर कोई हो निर्बल या बलवान
किन्तु कोश करुणा का जिसका हो पूरा, दे दान ;

जो विश्व-वेदना को अपनी वेदना बना ले, प्रेमभाव फैलाये।

विश्व-वेदना का जो सुख से करता है आह्वान।

(विशाख नाटक)

अब भी चेत ले तू नीच !
दुःख-परितापित धरा को स्नेह-जल से सींच। (राज्यश्री नाटक)

क्रमशः कवि बौद्धों के दुःखवाद को छोड़ कर शैव आनन्दवाद को अपनाता है। वह अनुभव करने लगता है कि क्षणभंगुरतावाद और दुःखवाद से वैराग्य की भावना बढ़ती है। करुणा से जगत् का उपकार अवश्य होता है, लेकिन साथ में आशा और आनन्द का भाव होना चाहिये। यदि दुःख है, सुख भी तो है।

फूल जब हँसने लगते हैं
तभी हम रोने लगते हैं
और लोग जब रोने लगते हैं
तभी हम हँसने लगते हैं। (जनमेजय का नागयज्ञ)

अतः जीवन-दर्शन पर गम्भीर चिन्तन-मनन करते-करते वह गाने लगता है कि—

घबराना मत इस विचित्र संसार से।

आनन्द की कोई सीमा नहीं, सीधी राह चलो, किसी से धोखा मत करो, न आतंकित होवो न आतंकित करो, और शुचिता से जीवन

के अन्धकार को दूर कर दो। (विशाख नाटक)

जीने का अधिकार तुझे क्या, क्यों इस में सुख पाता है?
मानव, तूने कुछ सोचा है, क्यो आता है क्यों जाता है?

यह संसार तो कर्मक्षेत्र है। जिसे तू सुख समझे हुए है वही दुःख है, जिस कर्म को तू दुःखकर मानता है, अन्ततः उसी में सुख है।

(जनमेजय का नागयज्ञ)

सुख की सीमा नहीं सृष्टि में नित्य नये ये बनते हैं।

इनका रूप बदलता रहता है। सच्चा सुख सन्तोष में है, पूर्णकाम ही शान्ति को प्राप्त करता है। (विशाख नाटक)

ठीक है कि जगत् में फूट, दुःख, निराशा बढ़ रही है। लेकिन हम मिल जायें तो आनन्द और आशा का विस्तार हो। (कामना)

यह संसार सत्य, कर्मक्षेत्र और स्वर्ग है, इसे मिथ्या न समझो। सेवा और परोपकार से शांति की स्थापना होती है। ईश्वर क्या है? यही विश्व। और विश्व से प्रेम करना ईश्वर से प्रेम करने का पर्याय है।

(विशाख नाटक)

मधुमत्त मिलिन्द, माधुरी
मधु राका जग कर बिता चुके।

तभी तो इन मधुकरों को प्रातः मकरन्द पीने का अधिकार मिला। तुम भी मकरंद पीने के अधिकारी बनो। (विशाख नाटक)

प्रसाद के उद्बोधन-गीत बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और 'हिमाद्रि तुंग शृंग से' विश्व के राष्ट्रीय गीतों में स्थान पाने योग्य हैं। भाषा और भाव दोनों ओजपूर्ण और स्फूर्तिदायक हैं। ऐसे गीतों के तीन वर्ग किये जा सकते हैं—

(क) चेतावनी गीत, (ख) वीर गीत, तथा (ग) राष्ट्रीय गीत।

कई गीतों में अपने मानवीय कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक किया

गया है—

मन जागो जागो

मोह निशा छोड़ के मन जागो जागो

कमल खिल गये, मधुप उन पर गुंजार रहे हैं, प्रकृति तुम्हारे लिए सुधा-पात्र लिये खड़ी है। जागो! (जनमेजय का नागयज्ञ)

तुम्हारे मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आयँगी। क्या इस बीहड़ वेला में तुम अपनी जर्जर तरी को खे लोगे? काँटों से भरा मार्ग क्या सहज में पार कर पाओगे? क्या जलजाल का, उठती हुई लहरों का सामना कर सकोगे? (स्कन्दगुप्त नाटक)

कवि ने देश के नवयुवकों को उभारा है—

पैरो के नीचे जलधर हों, बिजली से उनका खेल चले।

कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न हों

तब भी गिरिपथ का अथक पथिक, ऊपर ऊँचे सब झेल चले।

वह ज्योति बनकर, पीड़ा की धूल उड़ाता सा, बाधाओं को ठुकराता सा, और कष्टों पर मुसकाता सा, आगे बढ़े। (ध्रुवस्वामिनी नाटक)

क्या सुना नहीं कुछ अभी पड़े सोते हो

क्यों निज स्वतन्त्रता की लज्जा खोते हो?

प्रतिहिंसा का विष तुम्हें नहीं चढ़ता क्या?

इतने शीतल हो, वेग नहीं बढ़ता क्या?

जब दर्प भरा अरि चढ़ा चला आता है

तब भी क्या तुममे आवेश नहीं आता है?

सचमुच क्या तुम पुरुष हो या नारी? कुल-ललनाओं की लाज बचा लो नहीं तो अयश होगा। अपने स्वत्वों के लिए जूझो। अपनी दीन दशा पर तुम्हें क्या दया भी नहीं आती। उठो, अब भी पड़े सोते हो! (जनमेजय का नागयज्ञ)

देश की दुर्दशा निहारोगे?

तुम्हें तो हाथ में करताल लेना चाहिये था, पर तुम रत हो विलास में। तुम क्या से क्या हो रहे हो? अपनी बिगड़ी आप सँवारो। अपनी दीनता पर विचार करो। तुम सो रहे हो। जागो और कुछ कर दिखाओ। (स्कन्दगुप्त नाटक)

नाटकों में चार राष्ट्रीय गीत ऐसे हैं जो हिन्दी साहित्य में ही नहीं, भारतीय साहित्य में भी अपना गौरव बनाये रखेंगे।

पददलित किया है जिसने भूमंडल

वही है भारत देश। हमारा अश्वमेध का घोड़ा विश्व को चौंकाने वाला, हमारी विजयों का प्रतीक है। हमारा झंडा मलय पवन से मिल कर विजय के गीत गाता है। जय आर्य भूमि की, जय आर्य जाति की। (जनमेजय का नागयज्ञ)

हिमालय के आंगन में

उषा की किरणें लेकर हम संसार को प्रकाशित करते आये हैं। हम जगे और विश्व को जगाया। हमारे कारण

अखिल सृष्टि हो चली अशोक।

सप्तसिंधु में वेद का गान हुआ। दधीचि ने वह त्याग किया जिससे हमारी जाति का विकास हुआ। विस्तृत सिंधु पर हमारे पदचिह्न अब भी लगे हैं। हमने अहिंसा और शांति का संदेश दिया। हमने कई उत्थान पतन देखे हैं।

चरित के पूत, भुजा में शक्ति
नम्रता रही सदा सम्पन्न।
वचन में सत्य हृदय में तेज,
प्रतिज्ञा मे रहती थी टेव।

हम वही आर्य सन्तान हैं।

निछावर कर दें हम सर्वस्व
हमारा प्यारा भारतवर्ष। (स्कन्दगुप्त नाटक)

'चन्द्रगुप्त' नाटक के दोनों गीत सर्वोत्तम हैं—

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती—
अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पथ है बढ़े चलो बढ़े चलो
...

सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी
...प्रवीर हो जयी बनो बढ़े चलो बढ़े चलो

और नीचे वह गीत है जिसमें वह भावना है जो देश-विदेश के लोगों में भारत के प्रति रही है—

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

इस देश का जीवन कितना सुखमय और आकर्षक है।

उड़ते खग जिस ओर मुँह किये—समझ नीड़ निज प्यारा।

यहाँ के जन, घन, वन, पर्वत, उषा, सन्ध्या सब मनोहर हैं।

छः कविताएँ ऐसी उपलब्ध हुई हैं जिनमें प्रकृति के चित्र मिलते हैं। यह बात विशेषतया उल्लेखनीय है कि चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी और एक घूँट नाटकों में जो काव्य और कला की दृष्टि से अधिक प्रौढ़ है, एक भी उदाहरण स्वतंत्र प्रकृति-चित्रण का नहीं मिलता। गीतों में प्रकृति पृष्ठभूमि के रूप में, उपमान के रूप में अथवा सहचरी के रूप में तो है, पर आलम्बन के रूप में केवल विशाख (दो गीत), अजातशत्रु (दो गीत), कामना (एक गीत) और जनमेजय का नागयज्ञ (एक गीत) के अन्तर्गत प्रकृति का वर्णन हुआ है। आरम्भिक रचनायें होने के कारण इनमें सामान्यतः वह भावमयता है न प्रवाहपूर्णता। अजातशत्रु नाटक के दोनों गीत

अधिक सफल हैं। विशाख के दोनों गीतों में उद्यान की शोभा वर्णित है—

कुञ्ज में वशी बजती है।
सन्ध्या रागमयी, तानों का भूषण सजती है।

ऐसा दृश्य देखने को मन सब संकोच छोड़ कर जाना चाहता है।

छाने लगी जगत् में सुषमा निराली
गाने लगी मधुर मंगल कोकिलाली।
फैला पराग, मलयानिल की बधाई
देते मिलिन्द कुसुमाकर की दुहाई॥

'कामना' का गीत थोड़ा दार्शनिक हो गया है—

पृथ्वी की श्यामल पुलकों में सात्विक स्वेद बिंदु रंगीन

प्रकृति के कई रूप हैं। आँधी, चपला, तितली, मधु-सौरभ, सुधाभरी चाँदनी—सब अपनी शोभा दिखा जाते हैं। प्रकृति शाश्वत बनी रहती है।

मैं झूला झूलती रहती हूँ—बनी हुई अम्लान नवीन।

'जनमेजय का नागयज्ञ' वाला गीत प्रकृति-वर्णन भी है और प्रतीक रूप में प्रेम की एक स्थिति का चित्रण भी करता है—

अनिल भी रहा लगाये घात,
मैं बैठी द्रुम-दल समेट कर, रही छिपाए गात।
खोल कर्णिका के कपाट वह निधड़क आया प्रात,
बरजोरी रस छीन ले गया, करके मीठी बात।

'अजातशत्रु' के गीतों में छायावादी व्यंजना स्पष्ट है—

चल वसन्त वाला—वसन्त की सन्ध्या का वर्णन करते हुए कवि जीवन-चक्र पर विचार करने लगता है। वसन्त की मादक वायु समय की गति से ग्रीष्म की लू हो जाती है। वसन्त के आरंभ में सुगन्धि और शीतलता लिए हुए यह वायु सब को प्रफुल्लित करती है,

भौंरे भी मस्त हो कर फूल-पत्तियों का रस चूसते हैं। कुछ समय बाद पत्तियाँ पीली हो कर और फूल मुरझाकर गिर जाते हैं। बहुत दिनों तक फूल की हँसी दिखाई नहीं देती। फिर वसन्त आ जाता है और नई सृष्टि का आरंभ होता है।

अलका की किस विकल विरहिणी—एक बादल इन्द्रपुरी की किसी वियोगिनी की पलकों का अवलम्ब लिए पड़ा था। आज अचानक बरस पड़ा। वह किसी के हृत्तल में जमा बैठा था, आज किसी की गर्मी पाकर पिघल रहा है। यह बादल आज बनजारों के समान प्रवास से लौटा है। बिजली, चातक और तारागण को सुखी करके भी वह दुःखी है; क्यों?

६. कामायनी

'कामायनी' प्रसाद जी की अंतिम काव्यकृति, छायावाद-रहस्यवाद का प्रतिनिधि काव्य और आधुनिक हिन्दी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। कामायनी की कथा का आधार पौराणिक एवं ऐतिहासिक है। ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण में वर्णित जलप्लावन की घटना से लेकर पुराणों तक में बिखरी हुई सामग्री का अध्ययन करके और वर्षों अपना चिन्तन-मनन करके कवि ने इसकी रचना की। अपनी कल्पना द्वारा उन्होंने अनेक स्थलों पर कथा में परिवर्तन भी किया। अन्तिम भाग में उनकी मौलिकता विशेषतः दर्शनीय है। इसमें १५ सर्ग हैं जिनके शीर्षक स्थान, घटना या पात्र के नाम पर न रख कर मानसिक वृत्तियों के नाम से रखे गये हैं। उन मानसिक वृत्तियों का क्रम ऐसा रखा गया है जैसा कि मनुष्य के विकास में होता है—कुछ का सम्बन्ध पुरुष से है, कुछ का नारी से और कुछ का दोनों से। मनु के माध्यम से युग-युग के मानव का और श्रद्धा के माध्यम से युग-युग की नारी का मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार 'कामायनी' एक-साथ मनु

और श्रद्धा की, पुरुष और नारी की, एवं मनोभावों के विकास की कथा है। और, सच पूछा जाये, तो कथा एक अवलम्ब मात्र है—'कामायनी' में भारतीय संस्कृति और भारतीय दर्शन की साहित्यिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है, और एक बहाने से विश्व की वर्तमान समस्याओं का समाधान करने की चेष्टा की गई है। अतः एक ही दृष्टिकोण से इसके अध्ययन की सार्थकता न होगी। इसकी अनेक व्यंजनाओं को समझना ही 'कामायनी' की वास्तविकता को जानना है।

सर्गों के नाम ये हैं—चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य, आनन्द।

कामायनी का प्रारंभ प्रलय के उपरान्त नवसृष्टि से होता है।

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय-प्रवाह।

भीषण रव से धरती काँप रही थी। उदधि अखिल धरा को डुबा कर मर्यादाहीन हो गया था। अब धीरे-धीरे उसकी लहरें क्षीण होने लगी थीं।

बँधी महा वट से नौका थी
सूखे में अब पड़ी रही;
उतर चला था वह जल-प्लावन,
और निकलने लगी मही।

मनु चिंतामग्न था। वह सोच रहा था कि इस महामृत्यु के ताण्डव नृत्य में भी देवजाति वैभव, विलास, दम्भ और मिथ्याभिमान में पड़ी

है। इस नश्वर, दुःखी संसार में अमरता का यह ढोंग!

मौन! नाश! विध्वंस! अँधेरा!
शून्य बना जो प्रगट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते!
तुझको यहाँ कहाँ अब ठाँव।

अमरों की संस्कृति का ह्रास हो गया।

वे सब डूबे, डूबा उनका
विभव, बन गया पारावार;
उमड़ रहा था देव सुखों पर
दुःख जलधि का नाद अपार।
वह उन्मत्त विलास हुआ क्या?
स्वप्न रहा था या छलना थी।
देव सृष्टि की सुख विभावरी
ताराओं की कलना थी।
....

गया सभी कुछ गया, मधुरतम
सुर बालाओं का शृंगार;
उषा ज्योत्स्ना सा यौवन-स्मित
मधुप सदृश निश्चित विहार।

देवत्व के शिथिल होने का मनु को विक्षोभ था। वह उद्विग्न हो उठा।—

चिन्ता करता हूँ मैं जितनी
उस अतीत की, उस सुख की;
उतनी ही अनंत में बनती
जाती रेखायें दुख की।

क्रमशः धरातल से कोहरा हटने लगा। सागर का आन्दोलन

शान्त हो रहा था।

सिंधु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित वैठी सी;
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किये सी ऐंठी सी।

उदीयमान ग्रह-नक्षत्रों को देख कर मनु में कुतूहल के साथ जिज्ञासा उठ खड़ी हुई और उसे लगा कि इनके पीछे कोई सत्ता है।

विश्वदेव, सविता या पूषा
सोम, मरुत, चचल पवमान;
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान?
किसका था भ्रू भंग प्रलय सा
जिसमें ये सब विकल रहे;
अरे! प्रकृति के शक्तिचिह्न ये
फिर भी कितने विकल रहे!

यह आशा थी।

यह कितनी स्पृहणीय बन गई
मधुर जागरण सी छविमान;
स्मिति की लहरों सी उठती है
नाच रही ज्यों मधुमय तान।

आशा ही से जगती का सुख, हास, उल्लास और निर्माण होता है। मनु ने भी एक विस्तृत रमणीय गुहा में अपना निवास-स्थान बना लिया—सुन्दर, स्वच्छ और रमणीय। पाक-यज्ञ का आरम्भ हुआ। मनु को लगा कि संभव है मेरी ही तरह किसी और का जीवन बच गया हो। उसका चित्त किसी साथी की चाह में विह्वल हो उठा। ऐसे तो वह तपस्या और एकाकी जीवन का भार न ढो सकेगा।

संयोग से काम गोत्र की बाला कामायनी (श्रद्धा) यज्ञशेष की खोज में उधर आ निकली।

नित्य यौवन छवि से हो दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्त्ति ;
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।

आपस में परिचय हुआ। मनु के नैराश्यपूर्ण जीवन को देख कर श्रद्धा ने उसे उभारा—उठो और कर्म में प्रवृत्त होवो।

बनो संसृति के मूल रहस्य
तुम्हीं से फैलेगी यह वेल ;
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।
और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान—
"शक्ति शाली हो, विजयी बनो"
विश्व में गूँज रहा जयगान।
डरो मत अरे अमृत सन्तान
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि ;
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र
खिची आवेगी सकल समृद्धि।

देव संस्कृति से ध्वस्त मानव संस्कृति की सृष्टि करो। पर अकेले तुम आत्म-विस्तार नहीं कर पाओगे। मेरी सेवा तुम्हें समर्पित है।

मनु में उल्लास भर गया। वह सौन्दर्य के रहस्य को जानने के लिए उत्सुक हो उठा। स्वप्न में उसे काम ने सूचित किया कि मैं देवताओं का उपास्य बन गया था।

देवों की सृष्टि विलीन हुई
अनुशीलन में अनुदिन मेरे ;
मेरा अतिचार न बंद हुआ
उन्मत्त रहा सब को घेरे ।
मेरी उपासना करते वे
मेरा संकेत विधान बना ;
विस्तृत जो मोह रहा मेरा
वह देव विलास वितान बना ।

मेरी पत्नी रति अनादि वासना है ।

सुर बालाओं की सखी रही
उनकी हृत्तंत्री की लय थी ।
रति, उनके मन को सुलझाती
वह राग भरी थी, मधुमय थी ।
मैं तृष्णा था विकसित करता,
वह तृप्ति दिखाती थी उनको ;
आनन्द-समन्वय होता था
हम ले चलते पथ पर उनको ।

वे देव रहे न विनोद रहा । मैं अब अनंग हूँ । यह कामायनी हमारी सन्तान है । यदि उसके पाने की इच्छा हो तो इसके योग्य बनो ।

गृहपति [मनु] और अतिथि [श्रद्धा] में प्रतिदिन घनिष्ठता चढ़ती गई ।

चल रहा था विजन पथ पर मधुर जीवन-खेल ;
दो अपरिचित का नियति अब चाहती थी मेल ।

इधर घर में शस्य, पशु और धान्य आदि उपकरण एकत्र हुए । एक दिन मनु ने देखा कि श्रद्धा एक मृग को सहला रही है, उसे पुचकार-

दुलार रही है। मन में डाह पैदा हुई। मनु को उद्विग्न देख श्रद्धा उसे रात की चाँदनी में ले गई। अपना प्रेम प्रगट करते हुए

कहा मनु ने "तुम्हें देखा अतिथि! कितनी बार;
किंतु इतने तो न थे तुम दबे छवि के भार!

मै तुम्हारा हो रहा हूँ। यह धमनियों में वेदना-सा रक्त का संचार, यह वासना क्यों है? विश्वरानी! सुन्दरी नारी! मेरी चेतना तुम्हें समर्पित है।" श्रद्धा का नारीत्व प्रफुल्लित हो गया। उसके हृदय में हलचल मच गई।

और वह नारीत्व का जो मूल मधु अनुभाव,
आज जैसे हँस रहा भीतर बढ़ाता चाव।
मधुर व्रीड़ा-मिश्र चिन्ता साथ ले उल्लास,
हृदय का आनन्द कूजन लगा करने रास।

श्रद्धा ने अनुभव किया कि कोई नई भावना आ गई है जिसके कारण मेरी हँसी की तरलता मुस्कान में, मेरी अभिलाषा की दौड़ संकोच में बदल रही है।

तुम कौन? हृदय की परवशता?
सारी स्वतन्त्रता छीन रही;
स्वच्छंद सुमन जो खिले रहे
जीवन वन से हो बीन रही।

उत्तर मिला— मै रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ,
मै शालीनता सिखाती हूँ

मैं सुन्दरियों के मन की मरोड़ को जगाने वाली हूँ।

लाली बन सरल कपोलों में
आँखों में अंजन सी लगती;
कुंचित अलकों सी घुँघराली

मन की मरोर बन कर जगती।
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली;
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

श्रद्धा बोली, "किन्तु मैं तो निर्बल नारी हूँ। मेरा मन शिथिल है। कोमल अंगों के सौन्दर्य और सौष्ठव के कारण मैं पुरुष के सामने हार मान चुकी—आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ।

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग छलकता है;
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल झलकता है।"

लज्जा बोली, "नारी! तुम श्रद्धा हो। तुम देवों और दानवों के बीच सन्धिपत्र लिखने वाली हो। तुम जीवन को सुन्दर और समतल बनाती हुई अमृत के समान बहती चलो। अपने गौरव पर विश्वास रखो।"

कुछ काम के कथन के प्रभाव के कारण, और कुछ आशा और अभिलाषा के उत्साह से, मनु कर्ममार्ग में अग्रसर हुआ। उसकी वासनाएँ बढ़ चलीं। किलात और आकुलि नाम के असुर पुरोहितों के जाल में पड़ कर मनु के हीन देव-संस्कार पुनः जाग्रत हो गये—यज्ञ का अनुष्ठान करना, पशुबलि चढ़ाना, और सोमपान करना उसको भाने लगा। इससे श्रद्धा को बड़ा दुःख हुआ। मनु अपने सुख को सब कुछ मानने लगा था।

तुच्छ नहीं है अपना सुख भी
श्रद्धे! वह भी तो कुछ है;

तुमने तो समझा असत विश्व जीवन धागे में रहा भूल
जो क्षण बीतें सुख साधन में उनको ही वास्तव लिया मान
वासना तृप्ति ही स्वर्ग बनी, यह उलटी मति का व्यर्थ ज्ञान
तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।

तुमने वासना को अपनाया, पवित्र प्रेम को नहीं जाना। तुम्हारा जीवन सुखी नहीं होगा। श्रद्धावंचित मानव में संघर्ष, कलह, दारिद्रथ और अकल्याण बढ़ेगा।" काम यह शाप देकर चला गया। मनु आगे बढ़ा तो उसकी भेंट सारस्वत प्रदेश की रानी इड़ा से हुई। उसके देश में भौतिक हलचल मची थी, अतः वह किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में थी जो उसका राजकार्य सँभाले। मनु ने राजकाज अपने हाथ में ले लिया। उसे लगा कि अब सुख साधना का द्वार खुल गया।

श्रद्धा का जीवन सूना हो गया। बारह बरस बीत गये और उसका परदेसी नहीं लौटा।

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरंद रहा;
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहाँ!
वह प्रभात का हीनकला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही,
वह संध्या थी, रवि शशितारा ये सब कोई जहाँ नहीं।

उसके हर्ष-विषाद और सुख-दुःख का एक ही भागी था और वह था मनुजकुमार। श्रद्धा ने स्वप्न में देखा—मनु को एक नारी का सहारा मिल गया है और सारस्वत प्रदेश में भौतिक सुखों, ज्ञान-विज्ञान की बड़ी उन्नति हो रही है। श्रद्धा ने देखा प्रासाद में मनु आसव पी रहा है और इड़ा से अनुनय कर रहा है कि मै रीता हूँ, अतृप्त हूँ, मेरी प्यास बुझाओ। वह इड़ा को अपनी भुजाओं में जकड़ लेता

है। इड़ा चिल्ला उठती है।

उधर गगन मे क्षुब्ध हुईं सब देव शक्तियाँ क्रोध भरी,
रुद्र-नयन खुल गया अचानक, व्याकुल काँप रही नगरी।

धरती काँप उठी।

देखा उसने, जनता व्याकुल राजद्वार पर रुद्ध रही,
प्रहरी के दल भी झुक आये उनके भाव विशुद्ध नही।

कोलाहल में घिरे मनु डर गये।

श्रद्धा का था स्वप्न किन्तु वह सत्य बना था।

मनु पर सचमुच आपत्ति आ गई थी, इड़ा उसे समझाती थी कि लोक को सुखी बनाने के लिए व्यक्ति अपना व्यक्तित्व राष्ट्र-शरीर में मिला दे।

ताल ताल पर चलो नहीं लय छूटे जिसमें,
तुम न विवादी स्वर छेड़ो अनजाने इसमे।

लेकिन मनु इड़ा पर अपना अधिकार चाहता था।

तुम कहती हो विश्व एक लय है, मै उसमें
लीन हो चलूँ? किन्तु धरा है क्या सुख इसमे?
....

राष्ट्रस्वामिनी! यह लो सब कुछ वैभव अपना,
केवल तुमको सब उपाय से कह लूँ अपना।

उसने इड़ा पर हाथ बढ़ाया ही था कि क्षुब्ध प्रजा सिहद्वार तोड़ कर भीतर घुस आई। भयंकर संघर्ष हुआ। असुर पुरोहित मारे गये। इड़ा चिल्ला रही थी—

"युद्ध बद करो। ओ संहारी मानव,
क्यो इतना आतंक, ठहर जा ओ गर्वीले!
जीने दे सब को फिर तू भी सुख से जी ले।"

दो दिन के इस जीवन का तो
वही चरम सब कुछ है।

श्रद्धा ने समझाते हुए कहा—

अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा!
औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ;
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।

दूसरे प्राणियों के प्रति भी हमारा कर्त्तव्य है। मानवता का मुख्य अंग है अहिंसा, स्वार्थ-त्याग और सेवा-कर्म।

श्रद्धा अब माता बनने वाली थी। वह गृहस्थी जुटाने लगी।

जब देखो बैठी हुई वहीं
शालियाँ बीन कर नहीं श्रान्त।
या अन्न इकट्ठे करती है
होती न तनिक सी कभी क्लान्त।
बीजों का संग्रह और उधर
चलती है तकली भरी गीत;
सब कुछ लेकर बैठी है वह
मेरा अस्तित्व हुआ अतीत।

मनु अपना समय आखेट आदि में विताता था। उसे घर से विराग होता गया। उसे लगा कि श्रद्धा के प्रणय में वह रस नहीं रहा, न वह अनुरोध है न उल्लास। श्रद्धा ने निरीह पशुओं के वध को

चुरा बताया, और मनु को सूचित किया कि भावी शिशु की आशा में सुख-साधन जुटा रही हूँ। मनु ईर्ष्या और अहंकार से भर गया। बोला—

यह जलन नहीं सह सकता मैं
चाहिये मुझे मेरा ममत्व;
इस पंचभूत की रचना में
मै रमण करूँ बन एक तत्व।

प्रेम को यों बाँटने का ढंग मुझे पसंद नहीं। 'मन की परवशता महा दुःख' मेरा यही मंत्र है। यों

कह, ज्वलन-शील अंतर लेकर
मनु चले गये, था शून्य प्रान्त;
"रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही!"
वह कहती रही अधीर श्रांत।

[ईर्ष्या सर्ग में श्रद्धा का एक बहुत सुन्दर गीत है—"चल री तकली धीरे-धीरे।"]

मनु भटकते-भटकते सारस्वत प्रदेश में पहुँचा।

वृत्रघ्नी का वह जनाकीर्ण उपकूल आज कितना सूना
देवेश इंद्र की विजय कथा की स्मृति देती थी दुख दूना
वह पावन सारस्वत प्रदेश दुःस्वप्न देखता पडा क्लांत
फैला था चारो ओर ध्वांत।

मनु को देवों और असुरों के संघर्ष की स्मृति हो आई। आज उसकी अपनी स्थिति संघर्ष की थी जिससे वह क्षुब्ध और दीन हो रहा था। एक तीखी वाणी ने उसे चौंका दिया—

"मनु! तुम श्रद्धा को गये भूल
उस पूर्ण आत्मविश्वासमयी को उड़ा दिया था समझ तूल

तुमने तो समझा असत विश्व जीवन धागे में रहा भूल
जो क्षण बीतें सुख साधन मे उनको ही वास्तव लिया मान
वासना तृप्ति ही स्वर्ग बनी, यह उलटी मति का व्यर्थ ज्ञान
तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।

तुमने वासना को अपनाया, पवित्र प्रेम को नहीं जाना। तुम्हारा जीवन सुखी नहीं होगा। श्रद्धावंचित मानव में संघर्ष, कलह, दारिद्र्य और अकल्याण बढ़ेगा।" काम यह शाप देकर चला गया। मनु आगे बढ़ा तो उसकी भेंट सारस्वत प्रदेश की रानी इड़ा से हुई। उसके देश में भौतिक हलचल मची थी, अतः वह किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में थी जो उसका राजकार्य सँभाले। मनु ने राजकाज अपने हाथ में ले लिया। उसे लगा कि अब सुख साधना का द्वार खुल गया।

श्रद्धा का जीवन सूना हो गया। बारह बरस बीत गये और उसका परदेसी नहीं लौटा।

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरंद रहा ;
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमे है रग कहाँ!
वह प्रभात का हीनकला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही,
वह संध्या थी, रवि शशितारा ये सब कोई जहाँ नहीं।

उसके हर्ष-विषाद और सुख-दुःख का एक ही भागी था और वह था मनुजकुमार। श्रद्धा ने स्वप्न मे देखा—मनु को एक नारी का सहारा मिल गया है और सारस्वत प्रदेश में भौतिक सुखों, ज्ञान-विज्ञान की बड़ी उन्नति हो रही है। श्रद्धा ने देखा प्रासाद में मनु आसव पी रहा है और इड़ा से अनुनय कर रहा है कि मै रीता हूँ, अतृप्त हूँ, मेरी प्यास बुझाओ। वह इड़ा को अपनी भुजाओं में जकड़ लेता।

है। इड़ा चिल्ला उठती है।

उधर गगन मे क्षुब्ध हुई सब देव शक्तियाँ क्रोध भरी,
रुद्र-नयन खुल गया अचानक, व्याकुल काँप रही नगरी।

धरती काँप उठी।

देखा उसने, जनता व्याकुल राजद्वार पर रुद्ध रही,
प्रहरी के दल भी झुक आये उनके भाव विशुद्ध नहीं।

कोलाहल में घिरे मनु डर गये।

श्रद्धा का था स्वप्न किन्तु वह सत्य बना था।

मनु पर सचमुच आपत्ति आ गई थी, इड़ा उसे समझाती थी कि लोक को सुखी बनाने के लिए व्यक्ति अपना व्यक्तित्व राष्ट्र-शरीर में मिला दे।

ताल ताल पर चलो नहीं लय छूटे जिसमें,
तुम न विवादी स्वर छेड़ो अनजाने इसमे।

लेकिन मनु इड़ा पर अपना अधिकार चाहता था।

तुम कहती हो विश्व एक लय है, मै उसमें
लीन हो चलूँ ? किन्तु धरा है क्या सुख इसमें ?
....

राष्ट्रस्वामिनी ! यह लो सब कुछ वैभव अपना,
केवल तुमको सब उपाय से कह लूँ अपना।

उसने इड़ा पर हाथ बढ़ाया ही था कि क्षुब्ध प्रजा सिंहद्वार तोड़ कर भीतर घुस आई। भयंकर संघर्ष हुआ। असुर पुरोहित मारे गये। इड़ा चिल्ला रही थी—

"युद्ध बंद करो। ओ संहारी मानव,
क्यों इतना आतंक, ठहर जा ओ गर्वीले !
जीने दे सब को फिर तू भी सुख से जी ले।"

परन्तु वहाँ कौन सुनता था। शत्रु भीषण प्रहार कर रहे थे।

अंतरिक्ष में महाशक्ति हुंकार कर उठी,
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं।
और गिरीं मनु पर, मुमूर्षु वे गिरे वहीं पर,
रक्तनदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर।

वह सारस्वत नगर पड़ा था क्षुब्ध मलिन कुछ मौन बना। *और, इड़ा सोच में पड़ी थी। उसे मनु के पतन से ग्लानि हो रही थी।*

बाधाओं का अतिक्रमण कर जो अबाध हो दौड़ चले
वही स्नेह अपराध हो उठा जो सब सीमा तोड़ चले।

बात यह है कि

अपना हो या औरों का सुख बढ़ा कि बस दुख बना वही,
कौन विन्दु है रुक जाने का यह जैसे कुछ ज्ञात नहीं।

इड़ा ने सुना, कोई कह रही है—

अरे बता दो मुझे दया कर कहाँ प्रवासी है मेरा?
उसी बावले से मिलने को डाल रही हूँ मैं फेरा।

यह श्रद्धा थी और उसके पीछे-पीछे चला आ रहा था मनुजकुमार। सहसा श्रद्धा ने आलोक में देखा कि मनु घायल पड़ा है। वह उसे होश में लाई। पति-पत्नी और पिता-पुत्र का मिलन हुआ। मनु निर्वेद से दब रहा था—"श्रद्धे! तुमने मुझे जीवन का रहस्य बताया।

हृदय बन रहा था सीपी सा तुम स्वाती की बूँद बनीं,
मानस शतदल झूम उठा जब तुम उसमें मकरन्द बनीं।
तुमने इस सूखे पतझड़ में भर दी हरियाली कितनी,
मैंने समझा मादकता है तृप्ति बन गई वह इतनी।

भगवति!

तुमने हँस हँस मुझे सिखाया विश्व खेल है खेल चलो।
तुमने मिलकर मुझे बताया सब से करते मेल चलो।
....

किन्तु अधम मै समझ न पाया उस मंगल की माया को
और आज भी पकड़ रहा हूँ हर्ष शोक की छाया को।

आज मै अपराधी हूँ।

शापित सा मै जीवन का यह ले कंकाल भटकता हूँ।

दिन बीता, रजनी भी आई। प्रातःकाल हुआ तो मनु का कही पता नही था। वह सब को सोता छोड़ भाग गया था।

श्रद्धा मनुजकुमार को समझाने लगी—यह जीवन कितना सुन्दर है और यह विश्व तो सुखद शान्ति से भरा नीड़ है। इड़ा से वह मनु की करतूत के लिए क्षमा माँगने लगी। इड़ा बोली—

"मैं जनपद-कल्याणी प्रसिद्ध
अब अवनति कारण हूँ निषिद्ध।

सर्वत्र भय की उपासना हो रही है।"

श्रद्धा ने कहा—"तुम्हारी स्थिति जडता की रही है। तुम्हें हृदय नहीं मिला। लो यह मेरा कुमार। तुम तर्कमयी हो, यह श्रद्धामय। तुम मिलकर कर्म करो और संसार के संताप को दूर करो।" श्रद्धा मनु की खोज में निकल पड़ी। सरस्वती के किनारे-किनारे चलकर एक उपत्यका में उसने मनु को पा लिया। मनु को अपनी भूलों का ज्ञान हो गया था।

"तुम देवि! आह कितनी उदार,
यह मातृ मूर्ति है निर्विकार;
हे सर्वमङ्गले! तुम महती,
सब का दुख अपने पर सहती।"

परन्तु वहाँ कौन सुनता था। शत्रु भीषण प्रहार कर रहे थे।

अंतरिक्ष में महाशक्ति हुंकार कर उठी,
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं।
और गिरीं मनु पर, मुमूर्षु वे गिरे वहीं पर,
रक्तनदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर।

वह सारस्वत नगर पड़ा था क्षुब्ध मलिन कुछ मौन बना। *और, इड़ा सोच में पड़ी थी। उसे मनु के पतन से ग्लानि हो रही थी।*

बाधाओं का अतिक्रमण कर जो अबाध हो दौड़ चले
वही स्नेह अपराध हो उठा जो सब सीमा तोड़ चले।

बात यह है कि

अपना हो या औरों का सुख बढ़ा कि बस दुख बना वही,
कौन बिन्दु है रुक जाने का यह जैसे कुछ ज्ञात नहीं।

इड़ा ने सुना, कोई कह रही है—

अरे बता दो मुझे दया कर कहाँ प्रवासी है मेरा?
उसी बावले से मिलने को डाल रही हूँ मैं फेरा।

यह श्रद्धा थी और उसके पीछे-पीछे चला आ रहा था मनुजकुमार। सहसा श्रद्धा ने आलोक में देखा कि मनु घायल पड़ा है। वह उसे होश में लाई। पति-पत्नी और पिता-पुत्र का मिलन हुआ। मनु निर्वेद से दब रहा था—"श्रद्धे! तुमने मुझे जीवन का रहस्य बताया।

हृदय बन रहा था सीपी सा तुम स्वाती की बूँद बनीं,
मानस शतदल झूम उठा जब तुम उसमें मकरन्द बनीं।
तुमने इस सूखे पतझड़ में भर दी हरियाली कितनी,
मैंने समझा मादकता है तृप्ति बन गई वह इतनी।

भगवति!

तुमने हँस हँस मुझे सिखाया विश्व खेल है खेल चलो।
तुमने मिलकर मुझे बताया सब से करते मेल चलो।
....

किन्तु अधम मै समझ न पाया उस मंगल की माया को
और आज भी पकड़ रहा हूँ हर्ष शोक की छाया को।
आज मैं अपराधी हूँ।
शापित सा मै जीवन का यह ले कंकाल भटकता हूँ।
दिन बीता, रजनी भी आई। प्रातःकाल हुआ तो मनु का कहीं पता नही था। वह सब को सोता छोड़ भाग गया था।

श्रद्धा मनुजकुमार को समझाने लगी—यह जीवन कितना सुन्दर है और यह विश्व तो सुखद शान्ति से भरा नीड़ है। इडा से वह मनु की करतूत के लिए क्षमा माँगने लगी। इड़ा बोली—

"मै जनपद-कल्याणी प्रसिद्ध
अब अवनति कारण हूँ निषिद्ध।

सर्वत्र भय की उपासना हो रही है।"

श्रद्धा ने कहा—"तुम्हारी स्थिति जड़ता की रही है। तुम्हें हृदय नहीं मिला। लो यह मेरा कुमार। तुम तर्कमयी हो, यह श्रद्धामय। तुम मिलकर कर्म करो और संसार के संताप को दूर करो।" श्रद्धा मनु की खोज में निकल पड़ी। सरस्वती के किनारे-किनारे चलकर एक उपत्यका मे उसने मनु को पा लिया। मनु को अपनी भूलों का ज्ञान हो गया था।

"तुम देवि! आह कितनी उदार,
यह मातृ मूर्ति है निर्विकार;
हे सर्वमङ्गले! तुम महती,
सब का दुख अपने पर सहती।"

मनु को सामने आनन्द का दर्शन होने लगा।

देखा मनु ने नर्त्तित नटेश,
हत चेत पुकार उठे विशेष;
"यह क्या श्रद्धे! बस तू ले चल,
उन चरणों तक दे निज संबल;
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल,
पावन बन जाते हैं निर्मल;
मिटते असत्य से ज्ञान लेश,
समरस अखंड आनन्द वेश।"

दोनों पथिक हिमालय पर चढते जा रहे थे, ऊँचे बहुत ऊँचे। श्रद्धा मनु को एक समतल भूमि पर ले आई। सामने तीन आलोक-विन्दु दिखाई पड़े। श्रद्धा ने इनका रहस्य स्पष्ट किया। "ये विन्दु क्रमशः इच्छा, कर्म और ज्ञान के लोक हैं।

वह देखो रागारुण है जो
ऊषा के कंदुक सा सुन्दर;
छायामय कमनीय कलेवर
भावमयी प्रतिमा का मंदिर।
भावभूमिका इसी लोक की
जननी है सब पुण्य पाप की

यह इच्छा लोक है। यह माया-राज्य है जिसमें जीव फँसे रहते है।

चिर-वसंत का यह उद्गम है
पतझर होता एक ओर है;
अमृत हलाहल यहाँ मिले हैं
सुख दुख बँधते एक डोर हैं।

और यह श्यामलोक कर्मलोक है।

श्रममय कोलाहल, पीडन मय
विकल, प्रवर्त्तन महायंत्र का ;
क्षण भर भी विश्राम नहीं है
प्राण दास है क्रिया तंत्र का।
यहाँ सतत संघर्ष, विफलता
कोलाहल का यहाँ राज है ;
अंधकार में दौड़ लग रही
मतवाला यह सब समाज है।

सर्वत्र असन्तोष है।

बड़ी लालसा यहाँ सुयश की
अपराधों की स्वीकृति बनती।

और यह उजला-उजला

प्रियतम ! यह तो ज्ञान क्षेत्र है
सुख दुख से है उदासीनता
यहाँ न्याय निर्मम चलता है
बुद्धि चक्र जिसमें न दीनता।

यही तीन विन्दुओं का त्रिपुर है।"

श्रद्धा और मनु ऊपर ही ऊपर चले जा रहे थे कैलास मानसरोवर की पुण्य भूमि की ओर। यहीं इड़ा और मनुजकुमार भी उनसे आ मिले। उनके साथ धर्म का प्रतिनिधि सोमरसवाही नांदी वृषभ भी था।

मनु ने कुछ कुछ मुसक्या कर कैलास ओर दिखलाया ;
बोले, "देखो कि यहाँ पर कोई भी नहीं पराया।
हम अन्य न और कुटुम्बी हम केवल एक हमी हैं।
तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है।"

श्रद्धा के सुन्दर अधरों में स्मिति बिखर रही थी। हिमालय की पाषाणी प्रकृति आज मंगलमय हो रही थी।

> समरस थे जड़ या चेतन
> सुन्दर साकार बना था;
> चेतनता एक विलसती
> आनन्द अखंड घना था।

'कामायनी' का मनु मन का प्रतीक है। उसके माध्यम से मन के विकास की कहानी बताई गई है। प्रत्येक सर्ग का शीर्षक एक मानसिक वृत्ति है। चिन्ता सृष्टि का मूल रहस्य है। निर्माण करने से पहले एकान्त मे स्थित मन चिन्तना करता है। जिज्ञासा और कुतूहल उसमें सहायक होते हैं। चिन्ता करने से मन विक्षुब्ध होता है। तब आशा उसे सम्बल प्रदान करती है। मन को कर्म में प्रवृत्त करने वाली वृत्ति श्रद्धा या कामना है। श्रद्धा एक चेतन शक्ति है, वह आत्मा की ज्योति है। इससे चंचल मन स्थिर होता है। विलास के संस्कार श्रद्धा से परिष्कृत होते है। मन को आनन्द तक ले जाने वाली भी श्रद्धा ही है। वह काम की पुत्री है, अतः मनुष्य में काम की वृत्ति निदनीय नही है। काम तो जीवन के चार पदार्थों में से है—धर्म अर्थ काम मोक्ष के अन्तर्गत। किन्तु श्रद्धाहीन हो कर काम मन को उच्छृङ्खल भोगविलास में प्रवृत्त करता है और उसे पथभ्रष्ट कर देता है। तब काम एक विपय हो जाता है—काम क्रोध लोभ मोह अहंकार के अन्तर्गत। वासना मन को विकृत कर देती है। नारी का शृंगार है लज्जा और पुरुप का कर्म। लेकिन कर्म का मार्ग वड़ा वीहड़ है। यदि कर्म हिंसक अथवा भौतिक हुआ तो पुरुष की लालसा भड़क उठती है, उसकी अतृप्ति बढ़ जाती है। काम, वासना और कर्म का रूप विकृत होकर ईर्ष्या में परिणत होता है और ईर्ष्या

असन्तोष का कारण होती है। मन उस असन्तोष को दूर करना चाहता है। वह बुद्धि का सहारा लेता है। बुद्धि की सहायता से वह नये जीवन का निर्माण करने लगता है। बुद्धिप्रधान व्यवस्था में मन की आकांक्षा बढने लगती है। मन का बुद्धि-पक्ष अहंभावना उत्पन्न करता है। वह यन्त्रवत् हो जाता है। यहीं पर मन और बुद्धि में द्वन्द्व होता है। इस संघर्ष में मन पराजित होता है। तब वह खिन्नता या निर्वेद से भर जाता है। उसकी खोई हुई चेतना-शक्ति पुनः जागृत होती है। श्रद्धा के आते ही मन की जड़ता नष्ट हो जाती है।

उधर प्रभात हुआ प्राची में मनु के मुद्रित नयन खुले।

श्रद्धा जीवनी शक्ति है,

हृदय बन रहा था सीपी सा तुम स्वाती की बूँद बनी
मानस शतदल झूम रहा था तुम उसमें मकरन्द बनी।

श्रद्धा तम से ज्योति की ओर, मृत्यु से जीवन की ओर ले जाती है। मन की कमजोरी दूर होने में समय लगता है। मन तो बड़ा चंचल है। मन संकल्पविकल्पात्मक है। श्रद्धा उसकी दुर्बलताओं को दूर करती है। आत्मचेतना पाकर ही मन वास्तविक तत्त्व का दर्शन करता है। 'श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्'। मन के सामने शाश्वत मूल्यों के रहस्य का उद्घाटन होता है। अब उसकी सब भ्रांतियाँ समाप्त होती हैं और वह आनन्द की प्राप्ति करता है।

यह है 'कामायनी' की मनोवैज्ञानिक व्याख्या और इस कथा का रूपक। मन के दो पक्ष हैं—मस्तिष्क और हृदय। दोनों के सन्तुलन से मन को समरसता मिलती है। आत्मिक शान्ति के लिए श्रद्धा आवश्यक है।

'कामायनी' मानवता के विकास की भी कहानी है। मनु आदि

पुरुप है और श्रद्धा आदि नारी। सृष्टि के आरंभ में पुरुष और नारी का मिलन भी एक आकस्मिक और महत्त्वपूर्ण घटना रही होगी। यहीं से कुटुम्ब की व्यवस्था शुरू होती है। पुरुष शिकार करता और वाहर के कृत्यों को सम्पन्न करता था। नारी घर का प्रबन्ध करने लगी।

धीरे-धीरे जगत चल रहा
अपने उस ऋजु पथ में।

काम, कर्म, वासना, ईर्ष्या सब इस कर्मलोक के आवश्यक अंग हैं। इनके बिना भौतिक विकास संभव नहीं है। इन्हीं के कारण मनुष्य के सम्पर्क बढ़ते हैं। उसका विस्तार होता है।

रचना-मूलक सृष्टि यज्ञ यह
यज्ञ-पुरुष का जो है
संसृति सेवा भाग हमारा
उसे विकसने को है।
... .

सुख अपने संतोष के लिए
संग्रह मूल नही है।

क्रमशः भावी सन्तानों के लिए पुरुष और नारी ने मिल कर कई काम-धन्धों का आविष्कार कर लिया—कृषि, गृह-निर्माण, कताई-बुनाई इत्यादि; और एक अच्छी-खासी गृहस्थी जुटा ली।

जब देखो बैठी हुई वहीं
शालियाँ बीन कर नहीं श्रांत।
या अन्न इकट्ठे करती है
होती न तनिक सी कभी क्लान्त।
बीजो का संग्रह और उधर
चलती है तकली भरी गीत।

... ...

लौटे थे मृगया से थक कर
दिखलाई पड़ता गुफा द्वार।

... ...

पशुपालन का लाभ भी अनुभव किया जाने लगा—

चमड़े उनके आवरण रहें
ऊनों से मेरा चले काम;
वे जीवित हों मांसल बन कर
हम अमृत दुहें वे दुग्ध धाम।

अभी तक कोई सामाजिक पद्धति नहीं बनी थी। समाज का विकास ही नहीं हुआ था। परिवार ही इकाई था। परिवार के विकास में श्रद्धा का प्रमुख हाथ था और अब भी है।

समाज, संस्कृति, ज्ञान, विज्ञान का विकास हुआ तो बुद्धि के बल पर—लेकिन बिना श्रद्धा के; द्वन्द्व, संघर्ष और युद्ध कर के। आज भी अनेक राष्ट्र और व्यक्ति हैं जो श्रद्धाहीन होने के कारण दुःख का सृजन करते जा रहे हैं। उन्होंने भौतिक सुखों को तो जुटा लिया है लेकिन बुद्धि पर एकाधिकार पाने की लालसा मे दूसरों से स्पर्धा करते हैं—द्वयता फैलाते हैं।

बुद्धि की अति और तज्जन्य विकारों से मनुष्य अशान्त होता है।

प्रकृत शक्ति तुमने यंत्रों से सब की छीनी;
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।

इड़ा, स्वप्न और संघर्ष सर्गों में आधुनिक मनुष्य की स्थिति वर्णित की गई है। निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनन्द सर्ग मे भारतीय संस्कृति की उपलब्धियों की व्याख्या करते हुए संसार को भावी मनुष्य के निर्माण की राह बताई गई है।

भौतिक विकास और श्रद्धाहीन ज्ञान-विज्ञान का परिणाम क्या

होगा ?—स्वार्थ बढ़ेंगे, युद्ध होंगे, भय-विषाद-मृत्यु का आतंक छायगा, अपराध बढ़ेंगे, मानव पशु से भी नीचे गिर जायगा।

जब तक बुद्धि और हृदय का संतुलन नहीं होगा, तब तक मनुष्य का कल्याण सम्भव नहीं है। जीवन की विषमताओं से पलायन करने में कल्याण नहीं है, बल्कि आत्म-चेतना के प्रकाश में ज्ञान-लाभ करके कर्म में प्रवृत्त होकर ही मानव उस आनन्द को प्राप्त कर सकता है जो उसके जीवन का परम लक्ष्य है। इन्हीं शब्दों में श्रद्धा मानव को अपना संदेश देती है—

हे सौम्य ! इडा का शुचि दुलार,
हर लेगा तेरा व्यथा भार;
यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय;
इसका तू सब संताप निचय
हर ले, हो मानव भाग्य उदय,
सब की समरसता कर प्रचार
मेरे सुत ! सुन माँ की पुकार।

इच्छा, ज्ञान और क्रिया के समन्वय से मानवता की सिद्धि होगी, तभी अखंड आनन्द की उपलब्धि होगी।

शापित न यहाँ है कोई
तापित पापी न यहाँ है
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि यहाँ है।

ऐसी होगी वह दुनियाँ जिसकी कल्पना प्रसाद ने 'कामायनी' के माध्यम से की है।

'कामायनी' उस संस्कृति के प्रति विद्रोह उपस्थित करती है

जिसमें स्वार्थ है, जड़ता है; जो सुरा, सुरबाला और विलास का पोषण करती है; जिसके कारण व्यक्ति अथवा समाज में अगति, विशृंखलता, हिंसा, दम्भ, लालसा आदि दुर्गुण बढ़ते हैं। ऐसी वासना-प्रधान देव-संस्कृति असुर-संस्कृति से भी बुरी है। प्रसाद मानव संस्कृति की प्रतिष्ठा चाहते हैं जिसमें ईश्वर-विश्वास, सहानुभूति, परदुःखकातरता और कार्यनिष्ठा हो।

कर्मयज्ञ से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा।
... ...

यह नीड़ मनोहर कृतियों का यह विश्व कर्म रंगस्थल है।
... ...

रचना-मूलक सृष्टियज्ञ यह यज्ञपुरुष का जो है,
संसृति सेवा भाग हमारा उसे विकसने को है।

प्रसाद का विश्वास है कि—

बढ़ती है सीमा संसृति की बन मानवता धारा।

जीवन का समाधान पशुवृत्तियों और देववृत्तियों पर मानवता की विजय में है।

काव्यकला

पहले भी कहा गया है कि 'कामायनी' आधुनिक हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। कतिपय समीक्षकों का कहना है कि इसमें महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षण नहीं मिलते। 'साहित्य दर्पण' मे महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार वर्णित है—इसका नायक धीरोदात्त देवता या सद्वंशजात क्षत्रिय होता है। इसका प्रधान रस शृंगार, वीर अथवा शान्त होता है। अन्य रस गौण होते हैं। कथा ऐतिहासिक होती है अथवा सज्जनाश्रित। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

मे से एक उसका फल होता है। आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार अथवा वर्ण्यवस्तु-निर्देश रहता है। दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की स्तुति की जाती है। न वहुत छोटे न वहुत वड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। वह अनेक छन्दों से युक्त होता है, परन्तु प्रवाह को व्यवस्थित रूप में रखने के लिए एक सर्ग मे एक ही छंद होता है; अलवत्तः सर्ग के अंत में छंद वदल जाता है। उसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि-प्रदोप, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, ऋतु, मृगया, पर्वत, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, प्रेम, अभ्युदय आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होता है।

'कामायनी' में एक रस प्रधान है—शृंगार। अन्य रस गौण रूप मे आये हे। हास्य रस नहीं के वरावर है। वीररस एक ही स्थल पर मिलता है। वात्सल्य, भयानक, रौद्र, वीभत्स और करुण रस एक से अधिक प्रसंगों में प्राप्त होते हैं। अन्त में शान्त रस का आनन्द की उपलब्धि में समन्वय हुआ है। इस प्रवन्ध की कथा का सम्वन्ध सृष्टि के विकास से है। वेद, व्राह्मण और पुराण ग्रंथों ही में नहीं, संसार के प्रायः सभी पुराणों और धामिक ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है। इसका नायक प्रजापति मनु देवता है। नायक को कथा के अन्त मे सामरस्य और परमानन्द की प्राप्ति होती है—प्रसादजी के मत मे यही मोक्ष है, यही स्वर्ग हे। सर्गों की संख्या १५ हे, प्रत्येक सर्ग में एक भिन्न छन्द का प्रयोग हुआ है। वाह्य वस्तु वर्णन हे तो कम, लेकिन हिमालय, जल-प्रलय,. वसन्त, शिशिर, शरद्, उपा, संध्या, अन्धकार, मृगया, नगर, युद्ध, यात्रा, स्वर्ग आदि के चित्र अत्यंत मनोहर ढंग से वर्णित हुए हैं।

यह ठीक है कि 'कामायनी' का नायक कई दृष्टियों से शास्त्रीय मर्यादा के अनुकूल महाकाव्य के उपयुक्त नहीं है। धीरोदात्त तो

वह बिलकुल नही है। वीरता, शौर्य अथवा ऋपित्व उसमें कुछ भी नहीं। वह साधारण मानव है जिसमे दुर्बलताएँ अधिक हैं। बल्कि वह अपूर्ण और अशक्त है और कुछ ऐसा लगता है कि वह नायकत्व के योग्य नहीं है। कथायोजना मे घटनाओं की प्रधानता नहीं है। कथावस्तु सूक्ष्म है और दार्शनिकता अधिक हो जाने के कारण कथा में शैथिल्य आ गया है। मानसिक भावों की व्याख्या होने लगती है तो कथा-प्रवाह टूट जाता है। वृत्तियों के निरूपण में कथा-सूत्र बुरी तरह उलझ गया है। आरम्भ में मंगलाचरण अथवा आशीर्वचन नहीं है और न ही वर्ण्य वस्तु का निर्देश हुआ है। कहीं दुष्टों की निंदा अथवा सज्जनों की प्रशंसा की पंक्तियाँ भी नहीं है। किसी सर्ग के अंत में छंद नही वदलता। प्रकृति-वर्णन हुआ तो है पर सांगोपांग नहीं। यही सोच कर कुछ आलोचकों ने 'कामायनी' को महाकाव्य न कह कर 'गीतिकथाकाव्य' अथवा 'गीतिप्रवन्ध' कहा है। इसमें गीति-तत्त्व ही प्रधान है।

किन्तु, हमें यह न भूलना चाहिये कि प्रसाद के नाटकों में भी नाट्य-शास्त्र के पूरे लक्षण नहीं मिलते। उनमें भी मंगलाचरण, प्रस्तावना, विष्कम्भक आदि नहीं हैं। विवाह और मृत्यु के निषिद्ध दृश्य दिखाने में प्रसाद को संकोच नहीं होता। हम देखते हैं कि प्रायः प्रत्येक नाटक में उन्होंने शिल्पविधि-सम्बन्धी कोई-न-कोई नया प्रयोग किया है। हमने यह भी देखा है कि काव्य के क्षेत्र में भी उन्होंने पाश्चात्य पद्धतियों से वहुत कुछ ग्रहण किया। उन्होंने सानेट के ढंग की लगभग २७ चतुर्दशपदियाँ लिखीं, प्रगीत लिखे, अतुकांत कविताएँ लिखीं और अनेक नवीन रूपों के प्रयोग किये। अतः यह निश्चित है कि उन्होंने पूरे तौर पर परंपरा का पालन कहीं नही किया। वे प्राचीनता के उपासक थे पर अंधभक्त नही थे। वे पाश्चात्य गुणों के भी प्रशंसक थे, प्रयोगवादी भी थे, विद्रोही भी थे।

पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य के जो लक्षण निश्चित किये हैं उनमें से निम्नलिखित 'कामायनी' में देखे जा सकते हैं—महाकाव्य का आधार किसी प्राचीन घटना पर प्रतिष्ठित होता है, क्योंकि सामयिक घटनाओं की अपेक्षा प्राचीन घटनाओं के तारतम्य में कवि अपनी कल्पना की ऊँची उड़ानें ले सकता है। 'कामायनी' का आधार जलप्लावन की अतिप्राचीन गाथा है, और प्रसाद ने बड़ी स्वतंत्रता से उसमें अपनी कल्पना द्वारा तोड़-मरोड़ किये हैं। महाकाव्य में किसी व्यक्ति विशेष का चरित्र ही नहीं रहता, उसमें सम्पूर्ण जाति के क्रियाकलापों का वर्णन भी होता है, बल्कि व्यक्ति की अपेक्षा उसमें जातीय भावनाओं की प्रधानता रहती है। 'कामायनी' में भारतीय संस्कृति और जीवनदर्शन की व्याख्या अधिक है, मनु से सम्बन्धित कथांश तो बहुत थोड़ा-सा है। वर्णनों में भी भारतीय भावनाएँ व्याप्त हैं। बल्कि प्रसाद इससे भी एक पग आगे बढ़ गये हैं। उनके महाकाव्य में युग-युग के पुरुष और नारी के भावों की अभिव्यंजना हुई है। सम्पूर्ण कथासूत्र नायक से बँधा रहता है। 'कामायनी' का कोई ऐसा सर्ग नहीं जिसमें मनु उपस्थित न हों। महाकाव्य की शैली विशिष्ट महिमा और उच्चता से युक्त होती है। इस बात के प्रमाण इसी प्रकरण में दिये जा रहे हैं। कुछ आलोचकों का विचार है कि महाकाव्य के पात्रों का सम्पर्क देवताओं से रहता है, और उनके कार्यों की दिशा निर्धारित करने में देवताओं और भाग्य का हाथ रहता है। किंतु प्रसिद्ध आचार्य लुकन का कहना है कि उनके कार्यों में देवताओं तथा दैवी शक्ति को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। 'कामायनी' के नायक मनु स्वयं एक विद्रोही देवता हैं। श्रद्धा काम देवता की पुत्री है। इड़ा का संबंध भी देवलोक से है। श्रद्धा और मनु के मिलन में, मनु के पतन और उत्थान में, इत्यादि अनेक घटनाओं में

इस नियति नटी के अति भीषण
अभिनय की छाया नाच रही।

यह मानना होगा कि प्रसाद ने महाकाव्य-संबंधी पुरातन आदर्शों का अनुसरण सम्पूर्ण रूप से नहीं किया, उन्होंने उन आदर्शों में संशोधन-परिवर्द्धन कर दिया है और नवीन आदर्शों की सृष्टि भी की है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ साहित्यिक आदर्शों और शैलियों का विकास होगा ही। 'कामायनी' ऐसा ही विकासशील महाकाव्य है।

'कामायनी' उच्च साहित्यिक स्तर की काव्यकृति है। साधारण पाठकों के रसास्वादन के लिए इसमें कोई बात नहीं है। इसलिए यह 'रामचरितमानस' की तरह कभी लोकप्रिय नहीं हो सकती। यह तो चिन्तनशील सहृदय शिक्षित वर्ग के लिए गम्भीर कलापूर्ण काव्य है। कहानी का तत्त्व थोड़ा सा है। देवत्व के शिथिल होने की मनु को चिन्ता हुई। श्रद्धा ने आकर उसे आश्वासन दिया और पारिवारिक जीवन में प्रवृत्त किया। मनु अप्रतिहत कर्मस्रोत में बह चला और सन्तोषमयी श्रद्धा से उसे घृणा होने लगी। श्रद्धा को छोड़ मनु ने इड़ा का सहारा लिया। उधर श्रद्धा पुत्रवती हुई। उसने स्वप्न में देखा कि मनु पर विपत्ति आ गई है। मनु ने इड़ा पर एकाधिकार जमाना चाहा जिससे संघर्ष हो गया। यह स्वप्न सच्चा निकला। श्रद्धा अपने पुत्र मनुजकुमार को लेकर मनु की खोज में निकल पड़ी। सारस्वत प्रदेश में आकर उसने घायल मनु को पा लिया। मनु ग्लानि से भर गया और वह लज्जित हो कर सब को सोते छोड़ वहाँ से भी भाग गया। परन्तु श्रद्धा के विना कुछ सूझता नहीं था। अन्त में श्रद्धा से पुनः भेंट हुई तो ज्ञान, कर्म और भाव के रहस्यों का उद्‌घाटन हुआ और वे दोनों स्वर्ग में जा पहुँचे जहाँ समरसता, शान्ति और आनन्द है।

कथा का अभिधार्थ और रूपक साथ-साथ चलते है, बल्कि रूपकतत्त्व प्रधान है। मानसिक भावों की व्याख्या में कवि का मन रमता है। इससे कथा के समझने में उलझन होती है। कथानक तो बहुत सरल और सूक्ष्म है, लेकिन इसमें वर्णन कम है, विश्लेषण अधिक। आरंभ में कथा धीरे-धीरे चलती है। इड़ा के आगमन से कुछ गति में त्वरा आती है लेकिन अंतिम चार सर्गों में गति में शिथिलता आ जाती है। दृश्यों का परिवर्तन नाटकीय ढंग से होता है। कथोपकथन के द्वारा घटनाक्रम आगे बढ़ता है।

कथावस्तु के अनुकूल पात्रों की संख्या भी कम है। मनु नायक है और श्रद्धा नायिका। इड़ा उत्तरार्द्ध में आती है, और मनुजकुमार अत्यन्त गौण पात्र है। यही 'कामायनी' के चार पात्र हैं, यही इसके अन्त में एकत्र होते हैं। इन सब का चरित्र-चित्रण सफल है। मनु देव-सन्तान है। साधक के रूप में वह साहस और धैर्य का प्रतीक है। पहले उसमें शरीर-पक्ष की प्रबलता है। उसमें विलासिता, स्वार्थपरायणता, आसक्ति, अहंकार आदि दुर्वृत्तियाँ हैं। उसके जीवन में वासना, ईर्ष्या, चंचलता, दम्भ आदि दुर्बलताएँ हैं जो उसे विषम स्थितियों में डाल देती हैं। तप, मनन, संघर्ष, धैर्य और साहस के द्वारा वह गिरता-उठता इन कठिनाइयों को पार करता है। उसके चरित्र का परिष्कार न केवल श्रद्धा के संयोग से होता है न केवल इड़ा के संयोग से। जब उसका हृदय और मस्तिष्क दोनों पुष्ट होते है तभी उसे वास्तविक सुख की राह मिलती है। मनु के माध्यम से कवि ने मानव की दुर्बलताओं और सबलताओं का चित्रण किया है। मनु के चरित्र द्वारा कवि बताना चाहता है कि जो पुरुष श्रद्धा जैसी कल्याणमयी नारी की उपेक्षा करेगा वह मनु की तरह भटकता फिरेगा।

श्रद्धा ही कामायनी है जिसके नाम पर इस महाकाव्य का नाम

रखा गया है। वह पग-पग पर हमारे नायक का भी नेतृत्व करती है। वह आदर्श पत्नी, आदर्श गृहलक्ष्मी, आदर्श माता और आदर्श नारी के रूप में अंकित की गई है। त्याग, सेवा, क्षमा, करुणा, प्रेम आदि उदात्त गुण उसके नारीत्व का सौन्दर्य हैं। उसका शरीर सुन्दर और हृदय सुन्दरतर है—

हृदय के कोमल कवि की कांत कल्पना की लघु लहरी।

वह तपस्विनी है। वह मनु, इड़ा और मनुजकुमार की प्रेरणा-शक्ति, सब का कल्याण करने वाली मंगल-मूर्त्ति है।

हे सर्वमंगले! तुम महती,
सब का दुख अपने पर सहती;
कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा निलय में हो रहती।

वह सबला है, अबला नहीं। मनु की अपेक्षा उसका चरित्र बहुत ऊँचा है। वह सामूहिक चेतना (आत्मा) का प्रतीक है।

इड़ा सारस्वत प्रदेश की रानी है जिसका झुकाव भौतिकवाद की ओर है। जगत् की अपूर्णता पर उसे क्षोभ है और जगत्स्रष्टा के प्रति सन्देह और उपेक्षा। उसका विश्वास प्रत्यक्ष में है—बुद्धि और विज्ञान में। उसमें आकर्षण तो है, पर है भयावह। रानी के रूप में उसमें नीति, कर्तव्यपरायणता, व्यवस्था-शक्ति आदि गुण दिखाये गये हैं। नारी के रूप में वह मनु से प्रेम करती है, पर मर्यादा का उल्लंघन नही करना चाहती। वह क्षमाशील है। मनुजकुमार को पाकर वह संतुलित जीवन बिताने लगती है और अन्त में आनन्दधाम में पहुँच जाती है। पर यह समझ मे नही आता कि इड़ा जो मनु की पुत्री बताई जाती है प्रेयसी कैसे हो गई और बाद में पुत्रवधू के रूप में कैसे कल्पित कर ली गई? फिर यह भी एक समस्या पैदा हो गई है कि जिस इड़ा के कारण पति की

इतनी दुर्दशा हुई श्रद्धा ने उस इड़ा को अपना पुत्र क्यों सौंप दिया।

मनुजकुमार अत्यंत गौण पात्र है जिसके द्वारा शायद कवि इतना ही संकेत करना चाहता है कि मानव मन, बुद्धि और आत्मा के योग का नाम है। उसका जीवन कभी एक से कभी दूसरे से संचालित होता रहता है। समन्वय में उसका भी कल्याण है।

चरित्र-चित्रण की अपेक्षा प्रसाद का वस्तु-वर्णन अधिक सुन्दर और कलापूर्ण है। हिमालय, सारस्वत प्रदेश वा नगर, सरस्वती नदी, एवं कैलाश के चित्र अधूरे तो हैं पर हैं वड़े रम्य। प्रायः प्रकृति पृष्ठभूमि के रूप में वर्णित हुई है—जैसे चिन्ता सर्ग में जलप्लावन, अथवा आशा, रहस्य और आनन्द सर्ग में हिमगिरि, एवं दर्शन सर्ग में सरिता। वसन्त (काम सर्ग) और उषा (आशा सर्ग) के वर्णन छायावादी शैली के हैं। रात्रि का वर्णन आशा, काम, कर्म और दर्शन सर्गों में हुआ है। प्रकृति के अनेक वर्णनों में प्रतीकात्मकता है। हिम की स्तब्धता मनु के हृदय की स्तब्धता है और वसन्त की मादकता उसके यौवन की मादकता है। पर देखा जाय तो स्थूल के वर्णन में प्रसाद का मन अब नहीं रमता। 'कामायनी' के सूक्ष्म वर्णन अधिक मार्मिक हैं। श्रद्धा और इड़ा के रूप-वर्णन में कवि की गरिमा देखी जा सकती है। ये वर्णन परंपरामुक्त नख-शिख वर्णन से भिन्न हैं। उदाहरण—

सुरा सुरभि मय वदन, अरुण के
नयन भरे आलस अनुराग,
कल कपोल था जहाँ बिछलता
कल्प वृक्ष का पीत पराग।
... ...

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,

खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।
... ...

घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।
और उस मुख पर वह मुसक्यान!
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।
इत्यादि।

इससे भी अधिक सुन्दर चित्रण श्रद्धा की सुप्तावस्था के रूप का है—

जागृत था सौन्दर्य यदपि वह सोती थी सुकुमारी,
रूप चंद्रिका में उज्ज्वल थी आज निशा सी नारी।
वे मांसल परमाणु किरण से विद्युत थे बिखराते,
अलकों की डोरी में जीवन कण कण उलझे जाते।
विगत विचारों के श्रमसीकर बने हुए थे मोती,
मुख-मंडल पर करुण कल्पना उनको रही पिरोती।

विरहिणी श्रद्धा की अवस्था देखिये—

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरंद रहा,
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहाँ!
वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही,
वह संध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहाँ।
... ...

वह जलधर जिसमें चपला या श्यामलता का नाम नहीं,

शिशिर-कला की क्षीण स्रोत वह जो हिमतल में जम जाये।

इत्यादि।

भावी जननी के स्वरूप का निम्नलिखित वर्णन अपूर्व और अनुपम कहा जा सकता है—

केतकी गर्भ सा पीला मुँह,
आँखों में आलस भरा स्नेह,
कुछ कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका सी लिये देह। इत्यादि।

इससे भी अधिक सूक्ष्म वर्णन भावों का हुआ है। चिंता, आशा, लज्जा, वासना, ईर्ष्या, बुद्धि, काम, संघर्ष, निर्वेद आदि भाव मूर्तिमान किये गये हैं और उनकी वृत्ति का यथार्थ रूप चित्रित किया गया है। उदाहरण—

हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा,
हरी भरी सी दौड़ धूप, ओ जल माया की चल रेखा।

इस चिंता को कवि ने 'तरल गरल की लघु लहरी', 'व्याधि की सूत्रधारिणी,' 'हृदय-गगन में धूमकेतु-सी' कहा है। चिन्ता दुःखमूलक है, पर वह प्रगति का आधार है।

आशा का रूप भी देखिये—

यह कितनी स्पृहणीय बन गई मधुर जागरण सी छविमान,
स्मिति की लहरों सी उठती है नाच रही ज्यों मधुमय तान।

आशा मानव मन की विधायक वृत्ति है। इससे आस्था और अनुराग का उदय होता है।

लज्जा को 'नीरव निशीथ की लतिका सी', 'देवसृष्टि की रति-रानी', 'रति की प्रतिकृति' आदि नामों से पुकारा गया है। लज्जा गौरव-महिमा और शालीनता सिखाती है और सौन्दर्य की रक्षा करती है। वासना का स्वरूप-चित्रण संयत और अतिगम्भीर बन

पाया है—

छूटती चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशान्त।

वासना इन्द्रियों की विषय-तृप्ति की कामना करती है। इससे मन विकृत होता है।

चिन्ता सर्ग में मृत्यु का स्वरूप भी अंकित किया गया है।

मृत्यु, अरी चिर-निद्रे तेरा
अंक हिमानी सा शीतल,
तू अनंत मे लहर बनाती
काल-जलधि की सी हलचल। इत्यादि।

बुद्धि के निरूपण में झंझा, विक्षोभ, तर्कजाल आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

काम के दो रूप हैं शरीरी और अशरीरी (अनंग)। एक विषय अथवा दुर्व्यसन है तो दूसरा जीवन का फल। ऐन्द्रिक काम देवताओं के पतन का कारण हुआ। मनु भी इसी वासनामय काम के कारण अमृतधाम नारी-हृदय तक न पहुँच सके। इसी के कारण मनु और इड़ा में संघर्ष हुआ। अशरीरी काम का रूप श्रद्धा में प्रगट हुआ है। वह काम विश्वमैत्री, मंगल साधना, समरसता और आनन्द आदि की मूल शक्ति है।

ईर्ष्या अभाव और हीनता के कारण होती है और इसका परिणाम है अनुदारता, असहिष्णुता और दुःख। कर्म का स्वरूप हिंसात्मक है। कर्म उपभोग की वस्तु नहीं, वरन् त्याग और सेवा की वस्तु है—

निर्जन में क्या एक अकेले तुम्हें प्रमोद मिलेगा।
नहीं इसी से अन्य हृदय का कोई सुमन खिलेगा॥

दूसरों के सुख से सुखी होना तथा उनके दुःख से दुःखी होना ही

सत्कर्म है। जो व्यक्ति समष्टि के सुख में बाधक होता है वह मनु के समान ठोकरें खाता है।

कर्म यज्ञ से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा
इसी विपिन में मानस की आशा का कुसुम खिलेगा।

भावों की इन व्याख्याओं में 'कामायनी' का जीवन-दर्शन और संदेश निहित है। प्रसाद जी ने बहुत पहले अपनी एक कहानी "स्वर्ग के खँडहर में" में लिखा था—"पृथ्वी का गौरव स्वर्ग बन जाने से नष्ट हो जायगा। इसकी स्वाभाविकता साधारण स्थिति में ही रह सकती है। पृथ्वी को केवल वसुन्धरा होकर मानव जाति के लिए जीने दो। अपनी आकांक्षा के कल्पित स्वर्ग के लिए, क्षुद्र स्वार्थ के लिए, इस महती को, इस धरती को नरक मत बनाओ जिसमें देवता बनने के प्रलोभन में पड़ कर मनुष्य राक्षस न बन जाय।" प्रसाद जी मानते थे कि मानव देवता से ऊँचा है। देवता और दानव मानव से हेय और पतित हैं। देवताओं मे भोगविलास, हिंसा, उपेक्षा, दम्भ, वासना, आदि दुर्गुण हैं। मनु ऐसे जीवन से ऊब जाते हैं। दानवों में भौतिक लिप्सा है। इनके सम्पर्क मे आने से मनु पतित होते हैं। असुर पुरोहितों के प्रभाव से वे पाकयज्ञ के स्थान पर पशुयज्ञ करने लगते हैं। इस प्रकार हिंस्र कर्म करने से वे मानवता से गिर जाते हैं। देव और दानव दोनों अपूर्ण हैं। मनु पूर्ण मानवता का विकास करते हैं।

आज से मानवता की कीर्ति
अनिल भू जल में रहे न बन्द।

मनुष्य के विकास में नारी का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

नारी माया ममता का बल
वह शक्तिमयी छाया शीतल।

नारी भी वैसी हो जैसी श्रद्धा—

नारी, तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।

श्रद्धा चेतन है, इड़ा जड़ माया। श्रद्धा ही आकर मनु की सब जड़ता समाप्त करती है। अकेली बुद्धि सत्य और ज्ञान का उद्घाटन नहीं कर सकती। बुद्धि भौतिक समृद्धि मे सहायक हो सकती है। श्रद्धावाल्लँभते ज्ञानम्—श्रद्धा ही से ज्ञान प्राप्त होता है; और जैसे गीता में कहा गया है, ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति—ज्ञान पा लेने पर परम शान्ति अथवा आनन्द का लाभ होता है।

लेकिन, ज्ञान स्वतः लक्ष्य नहीं है। ज्ञान एक साधन है जिससे मानवता के हित में कर्म करने की प्रवृत्ति होती है—

तपस्वी! आकर्षण से हीन
कर सके नहीं आत्मविस्तार।

प्रेम और सेवा ज्ञान और तप से बढ़ कर हैं—

समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार।

प्रसाद जी ने ज्ञान, कर्म और इच्छा के समन्वय में मानव का कल्याण बताया है। जब मन, बुद्धि और आत्मा का सामञ्जस्य होगा, जब व्यक्ति और समाज मे, शिव और शक्ति में, अधिकारी और अधिकृत में, शासक और शासित में, पुरुष और प्रकृति में, सुख और दुःख मे समरसता आयगी, तभी समस्त विरोधी शक्तियाँ सन्तुलित होकर आनन्द की सृष्टि करेंगी।

नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि समान

व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान ।

इस समरसता की भित्ति श्रद्धा है । सात्विक श्रद्धा ही से प्रेम और विश्वास की उत्पत्ति होती है ।

आनन्द जीवन का लक्ष्य है, सर्वोच्च प्राप्य है । संसार का समस्त ज्ञान, समस्त कर्म आनन्द के लिए ही प्रयत्नशील है । आनन्द की भावना मानव को संपूर्ण विश्व से नियोजित करती है ।

यह है कामायनी का संदेश—वर्तमान विज्ञान-प्रधान बुद्धिजीवी व्यथित और वासनाभुक्त संसार को ।

'कामानयी' का कलापक्ष अत्यन्त पुष्ट और प्रौढ है । रस, अलंकार, छंद, भाषा और शैली सब में नवीनता है, सब मे मौलिकता है । पहले कहा जा चुका है कि रसों में शृंगाररस की प्रधानता है । वियोग की अपेक्षा संयोग का वर्णन बहुत अधिक हुआ है । चिन्ता, आशा, श्रद्धा, लज्जा आदि कई आरम्भिक सर्गों में संयोग के विविध पक्ष वर्णित हुए हैं । वियोग शृंगार के संकेत यत्र-तत्र हुए हैं, खुल कर कहीं भी ऐसे वर्णन नहीं मिलते जैसे नाटकों में अथवा 'लहर' और 'आँसू' में । यह भी कवि की अपनी सूझ हो सकती है । श्रद्धा के विरह में संयम और संतुलन है । इड़ा को जैसे विरह-दुःख हुआ ही नहीं । शान्त रस 'निर्वेद' और 'आनन्द' सर्ग में आया है और थोड़ा-सा प्रसंग आशा सर्ग में मिलता है । प्रलय के वर्णन में भयानक और रौद्र रस मिलते हैं । कर्म और रहस्य सर्ग में भी भय का वर्णन है । नटराज के ताण्डव नृत्य में और त्रिपुर-वर्णन में अद्‌भुत रस की छटा है । करुण रस चिन्ता सर्ग में और ईर्ष्या सर्ग में 'रुक जा, सुन ले, ओ निर्मोही' के साथ आता है पर थोड़ा-सा । वीर रस भी अत्यल्प

मात्रा में संघर्ष सर्ग में मिलता है। हास्य का अभाव-सा है।

प्रसाद ने लगभग १३ छंदों का प्रयोग 'कामायनी' में किया है। प्रधान छंद ताटंक है जो कभी लावनी का और कभी वीर छंद का रूप धारण कर लेता है। चिन्ता, आशा, स्वप्न और निर्वेद सर्गों में ताटंक का प्रयोग हुआ है। लज्जा सर्ग में पद-पादाकुलक, वासना सर्ग में रूपमाला, कर्म सर्ग में सार, और संघर्ष सर्ग में रोला प्रयुक्त हुआ है। ईर्ष्या तथा दर्शन में पद्धरी और पद-पादाकुलक का मेल कर कवि ने नवीन छंद की योजना की है। रहस्य सर्ग में भी ताटंक के साथ एक गुरु जोड़ कर नया छंद बना लिया है। 'आनन्द' का छंद भी प्रसाद का अपना प्रिय छंद है जो 'आँसू' में प्रयुक्त हुआ है। 'इड़ा' सर्ग में गीत हैं। इन सब के उदाहरण इसी प्रकरण के आरंभ में यथास्थान देखे जा सकते हैं।

'कामायनी' का विशेष काव्यसौन्दर्य उसकी अलंकार-शैली में निहित है। अलंकार तो वही हैं—उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा—जो आधुनिक हिन्दी साहित्य में अधिकतर प्रयुक्त होते हैं, लेकिन 'कामायनी' के उपमानों में जो नवीनता, विचित्रता और उपयुक्तता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उदाहरण—

कौन हो तुम विश्वमाया कुहुक-सी साकार,
प्राण सत्ता के मनोहर भेद-सी सुकुमार। (वासना)

माधवी निशा की अलसाई अलकों मे लुकते तारा-सी,
क्या हो सूने मरु अंचल मे अंतः सलिला की धारा सी।
(काम सर्ग)

भुजलता फँसा कर नर तरु से
झूले सी झोंके खाती हूँ। (लज्जा सर्ग)

भुजलता पड़ी सरिताओं की
शैलों के गले सनाथ हुए।

जलनिधि का अंचल व्यजन बना
धरणी का, दो दो साथ हुए। (काम सर्ग)
श्याम नभ मे मधु किरण सा फिर वही मृदु हास (वासना सर्ग)
इस प्रकार के उपमानों का वैभव प्रत्येक सर्ग में देखने को मिलता है।

भावों के अनुकूल शब्द-योजना कभी मृदुल और कभी ओजपूर्ण, कभी मधुर और कभी परुष हो जाती है। उदाहरण—

१. तुमुल कोलाहल कलह में मैं हृदय की बात रे मन इत्यादि गीत।

२. कंकण क्वणित रणित नूपुर थे
हिलते थे छाती पर हार,
मुखरित था कलरव, गीतों में
स्वरलय का होता अभिसार।

३. उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी,
चली आ रही फेन उगलती,
फन फैलाये व्यालों सी।

४. छूट चले नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले,
टूट रहे नभ धूमकेतु अति नीले पीले!
अंधड़ था बढ़ रहा, प्रजा दल सा झुंझलाता,
रण वर्षा में शस्त्रों सा बिजली चमकाता। इत्यादि।

प्रसाद सफल शब्दशिल्पी थे। साधारणतया 'कामायनी' की शब्दावली में सांकेतिकता, चित्रमयता, संगीतात्मकता आदि गुण पाये जाते है। मीठी, सरस और कोमल ध्वनियों का प्रयोग अधिक मिलता है, इसलिए कि 'कामायनी' में कोमल कान्त भावों की व्यापकता है।

'कामायनी' में प्रसाद की सभी विकसित शैलियों का उत्कृष्ट

रूप निखर कर आया है। प्रसाद जी द्वारा प्रयुक्त अलंकारों में उपमा और रूपक सर्वप्रधान हैं। इन्हीं से प्रतीक-योजना का विकास हुआ जो छायावादी काव्य का एक प्रमुख लक्षण बन गया। कामायनी में अनेक स्थलों पर विविध भावों की अभिव्यक्ति में प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। उदाहरण—

मन शिशु की क्रीड़ा नौकाएँ बस दौड़ लगाती हैं अनन्त।
(इड़ा सर्ग)

उषा सुनहले तीर बरसाती। (आशा सर्ग)

विश्व भर सौरभ से भर जाय सुमन के खेलो सुन्दर खेल।
(श्रद्धा सर्ग)

इड़ा सर्ग में बीसियों प्रतीक मनु के विषाद की व्याख्या करते है। वास्तव में पूरी कथा प्रतीकात्मक है। मन, बुद्धि और आत्मा के नाना रूपों को प्रतीकों द्वारा समझाया गया है। जीवनदर्शन की अनेक सूक्ष्मताओं को मूर्त्त प्रतीकों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

'कामायनी' का एक-एक पद प्रसाद के कल्पना-विलास का प्रमाण है। अलंकारों की नवीनता भी उनकी कल्पना-शक्ति के कारण है। कहीं-कहीं यह कल्पना अत्यंत मनोहर चित्र उपस्थित करने में समर्थ हुई है। उदाहरण—

खुलीं उसी रमणीय दृश्य में
अलस चेतना की आँखें;
हृदय कुसुम की खिली अचानक
मधु से वे भीगीं पाँखें। अथवा,

शिथिल अलसाई पड़ी छाया निशा की कांत,
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रांत।
उसी झुरमुट में हृदय की भावना थी भ्रांत,
जहाँ छाया सृजन करती थी कुतूहल कांत।

काव्य का आरम्भ ही कवि की कल्पना के एक मोहक चित्र से होता है—

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।

कवि की कल्पना बाह्य जगत् तक ही नहीं अन्तर्जगत् की गहराइयों तक भी सहज में पहुँच जाती है और पाठक को भी उस कल्पनाजगत् में ला खड़ा करती है। काव्य के उत्तरार्द्ध मे कल्पना का वैभव अत्यधिक मोहक हो गया है।

प्रायः सर्गों का आरम्भ बड़े नाटकीय ढंग से होता है। कथोपकथन भी नाटकीयता लाने में सहायक हुए है। एक ही उदाहरण यह बताने के लिए पर्याप्त होगा कि इससे कथा के विकास में कितनी संक्षिप्तता और रोचकता आ जाती है।

प्रतिभा प्रसन्न मुख सहज खोल
वह बोली, "मै हूँ इड़ा, कहो तुम कौन यहाँ पर रहे डोल।"
नासिका नुकीली के पतले पुट फरक रहे कर स्मित अमोल
"मनु मेरा नाम सुनो बाले! मैं विश्व पथिक सह रहा क्लेश।"
"स्वागत! पर देख रहे हो तुम यह उजड़ा सारस्वत प्रदेश।
भौतिक हलचल से यह चंचल हो उठा देश ही था मेरा
इसमें हूँ अब तक पड़ी इसी आशा से आये दिन मेरा।"
"मैं तो आया हूँ देवि बता दो जीवन का क्या सहज मोल
भव के भविष्य का द्वार खोल।"

हम उन आलोचकों से सहमत हैं जिनका कहना है कि प्रसाद ने अपनी भाषा को परिष्कृत करने का कभी प्रयत्न नहीं किया। इस काव्य में भी अनेक दुष्प्रयोग मिल जायँगे। अनेक पंक्तियाँ निरर्थक

सी जान पड़ती हैं, और अनेक व्याकरण की दृष्टि से दोषयुक्त हैं।' एक ही पंक्ति में सम्बोधन करते हुए तू और तुम, तुम्हारा और तेरा प्रयुक्त हो गये हैं। स्त्रीलिंग-पुंल्लिंग का प्रयोग भी यत्र-तत्र अशुद्ध है।' बहुत से शब्द अपने से भिन्न अर्थों में व्यवहृत हुए हैं। इन सब के उदाहरण—

१. मैं अतृप्त आलोक भिखारी ओ प्रकाश-बालिके! **बता**
   ...तब तुम प्रजा **बनो** मत रानी...।

२. अरे अमरता के चमकीले पुतलो! **तेरे** वह जयनाद।

३. किंतु, यह क्या? एक **तीखी घूँट**, हिचकी आह?

४. तुहिन कणों, फेनिल लहरों में मच **जावेगी** फिर अंधेरा।

५. मनु बैठ गये **शिथलित** शरीर।

६. एक सजीव तपस्या जैसे पतझड़ में कर वास **रहा**।

ऐसा रहने पर भी 'कामायनी' की भाषा प्रायेण मधुर, रसमयी, सरल और प्रवाहपूर्ण है। वस्तुतः प्रसाद भावों के परिष्कार में अधिक प्रयत्नशील रहे हैं।

७. प्रसाद-काव्य का प्रेय और श्रेय

'काव्य और कला' शीर्षक अपने एक निबन्ध में प्रसाद ने काव्य का लक्षण यह बताया है कि 'वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है।' अपने काव्य द्वारा प्रसाद ने अनेक ज्ञानधाराओं को प्रवाहित किया है। उन्होंने इतिहास-पुराण की कितनी ही विस्मृत घटनाओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। इतिहास के सामान्य विद्यार्थी जानते हैं कि आर्य लोग भारत में बाहर से आये। उनके आने से पहले यहाँ सहस्राब्दियों तक काली चमड़ी वाली जातियाँ आईं और बस गईं। प्रत्येक ने यहाँ की सभ्यता के विकास में योग दिया। कहा जाता है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता, जिसके अवशेष मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा में पाये गये हैं, इन नाना जातियों की सम्मिलित और सम्मिश्रित सभ्यता की श्रेष्ठ और अन्तिम मंजिल थी। आर्यों ने मध्य एशिया से आकर यहाँ की आदि सभ्यता को विजित करके अपनी सभ्यता का प्रचार प्रसार किया। लगता है कि प्रसाद इस मान्यता से सहमत नहीं थे। कम-से-कम उन्होंने कहीं आर्यों की विजय का उल्लेख नहीं किया। बल्कि 'कामायनी' को पढ़ने से यह संकेत मिलता है कि आर्य लोग इसी देश के रहने वाले

थे और यहीं पर आर्य संस्कृति का विकास हुआ। प्रसाद का विश्वास था कि भारत आदि मानवों की जन्मभूमि है। यही आर्यों की जननी है।

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से आये थे हम नहीं।

—स्कन्दगुप्त नाटक

उनका कहना है कि अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि हैं; यह भारत मानवता की जन्मभूमि है। भारत समग्र विश्व का है, और सम्पूर्ण वसुन्धरा इसके प्रेम-पाश में आवद्ध है। अनादि काल से यह ज्ञान की, मानवता की, ज्योति विकीर्ण कर रहा है। वसुन्धरा का हृदय भारत किसको प्यारा नहीं! विदेशी भी गा उठते हैं

अरुण यह मधुमय देश हमारा।

प्रसाद के समय में विदेशी राज्य के कारण भारतीय इतिहास का विकृत रूप हमारे सामने लाया जा रहा था। राष्ट्रभावना को जाग्रत करने के लिए प्रसाद ने इतिहास के समुज्ज्वल दृष्टान्त छाँट-छाँट कर अपनी रचनाओं में रखे। इनको पढ़ कर पाठक को अपने राष्ट्र के प्रति गौरव और स्वाभिमान की स्फूर्ति होती है। प्रसाद ने इतिहास के युग-युग की परतें खोल कर दबे हुए ज्ञान-भण्डार को प्रत्यक्ष लाने का प्रयत्न किया। प्रागैतिहासिक काल की झाँकी 'भरत', 'वन-मिलन', और 'करुणालय' में, रामायण काल की 'चित्रकूट' और 'अयोध्या का उद्धार' में, महाभारत काल की 'कुरुक्षेत्र' और 'कृष्ण जयन्ती' में, बौद्ध काल की 'अरी वरुणा की शान्त कछार', 'जगती की मंगलमयी उषा बन' और अजातशत्रु नाटक के कतिपय गीतों में, और मौर्यकाल की झाँकी 'अशोक की चिन्ता' और चन्द्रगुप्त नाटक में प्रस्तुत की गई है। राजपूत काल के दृश्य 'प्रलय की छाया' और 'प्रेम राज्य में', मुगल काल के 'महाराणा का

महत्त्व', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' तथा 'शिल्प-सौन्दर्य' में, और सिक्ख इतिहास के दृश्य 'वीर बालक' और 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' में मिलते हैं। इन सब में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का वैभव दिखाई देता है। प्रसाद भारत की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा के लिए बहुत उत्सुक रहे हैं। इस मोह और पक्षपात के कारण यत्र-तत्र उन्होंने इतिहास-सिद्ध तथ्यों के विरोध में भी कल्पनाएँ की हैं और कहीं-कहीं ऐतिहासिकता को ठेस पहुँचाई है, पर यह भूलना नहीं चाहिये कि प्रसाद कवि थे, इतिहासकार नहीं थे।

प्रसाद के काव्य में आध्यात्मिक ज्ञान की धारा प्रबल रूप में बहती है। जीव और जगत्, आत्मा और परमात्मा के बारे में उनका अध्ययन, चिन्तन और मनन विस्तृत था। 'चित्राधार' और 'कानन कुसुम' की कविताओं में जो जिज्ञासा और कुतूहल दृष्टिगोचर होता है, उसी का समाधान उनकी प्रौढ़ कृतियों में पाया जाता है। वेद, उपनिषद्, गीता, शैव दर्शन और बौद्ध दर्शन से ले कर गांधी-दर्शन तक का मन्थन कर के उन्होंने जो समन्वित ज्ञानधारा प्रवाहित की वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से प्रसाद की रचनाओं का मूल्यांकन करने की परम आवश्यकता है।

प्रसाद जीवन को मिथ्या नही मानते हैं। जीवन एक वास्तविकता है। विश्व चेतना के आकार धारण करने की चेष्टा का नाम 'जीवन' है। जीवन का लक्ष्य 'सौन्दर्य' है, क्योंकि आनन्दमयी प्रेरणा जो उस चेष्टा या प्रयत्न का मूल रहस्य है स्वस्थ रहने पर सफल हो सकती है। मानव जीवन लालसाओं से बना हुआ सुन्दर चित्र है।

पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र। (कामायनी)
आकर्षण से भरा विश्व यह। (कामायनी)

जीवन में कभी पतझड़ है, कभी वसन्त। मनुष्य अपनी कल्याणमयी भावना से न केवल अपने जीवन को बल्कि सब के जीवन को सुखी

बना सकता है। सुख तो जीने में है। ऐसी हरी-भरी दुनियाँ, फूल-बेलों से सजे हुए नदियों के सुंदर किनारे, सुनहला सबेरा, चाँदी की रातें! क्या ऐसी दुनिया से मुँह मोड़ा जा सकता है? प्रकृति का प्रत्येक कण जीवन को सुखमय बनाने में लगा है। प्रेम का एक क्षण दुःख को सुख में परिवर्तित कर सकता है। जीवन-वन में उजियाली है। विश्व की सत्ता का मूल रहस्य आनन्द ही है। जीवन का अंतरंग सरलता और बहिरंग सौन्दर्य है, इसी में वह स्वस्थ रहता है। जीवन एक संग्राम है। आपत्ति से भागने वाला मनुष्य कायर है।

जीवन की सफलता कर्म में है। प्रसाद वैराग्य और निवृत्ति के पक्षपाती नहीं हैं, उन्होंने सर्वत्र अनुराग और प्रवृत्ति का पोषण किया है।

आत्मा और परमात्मा के संबंध पर विचार करते हुए प्रसाद की विचारधारा व्यावहारिक है। ईश्वर है; और वह सबके कर्म देखता है। अच्छे कार्यों का पारितोषिक और अपराधों का दंड देता है। वह न्याय करता है। ईश-भक्ति से बल मिलता है। "निराशा में, अशान्ति में, सुख और दुःख में, उस अपूर्व सुन्दर चन्द्र की भक्ति-रूपी किरणें तुम्हें शान्ति प्रदान करेंगी।...तुम्हारे पास चिन्ता, निराशा कभी फटकने न पावेगी।" यह सब सृष्टि उसी की है। यह संसार विश्वात्मा की अभिव्यक्ति है।

जय हो उसकी जिसने अपना
विश्वरूप विस्तार किया।
आकर्षण का प्रेम नाम से
सब में सरल प्रचार किया।

एक जीव का दूसरे जीव के साथ इसी नाते से घनिष्ठ संबंध है। इसी लिए कहा है—

प्रकृति मिला दो विश्व प्रेम में
विश्व स्वयं ही ईश्वर है।

अपने अस्तित्व को विश्व में विलीन कर दो। 'अहं' और 'इदं' का भेद न रहे। इसी अद्वैत भावना से आनन्द की प्राप्ति होती है।

प्रसाद-काव्य की ज्ञानधारा की सब से बड़ी विशेषता यह है कि वह रचनात्मक है। उसमें संदेह, विद्रोह, विप्लव, क्रान्ति अथवा विध्वंस का स्वर नहीं है, किसी मत का खंडन नहीं है, किसी धारा का विरोध नहीं है। उसमें कहीं भी साम्प्रदायिकता नहीं है। जैसा कि हम पहले कह आये हैं प्रसाद समन्वयवादी हैं; सामरस्य के हामी हैं।

सब की समरसता कर प्रचार
मेरे सुत! सुन माँ की पुकार। (कामायनी)

श्रेय

प्रसाद की समग्र चिन्तन-धारा के पीछे एक स्वर—मानव के श्रेय का—प्रबल है। प्रसाद मानवीय जीवन के कवि हैं। उनके दुःखवाद, करुणावाद, नियतिवाद, आशावाद, आदर्शवाद, अतीतवाद, आनन्दवाद इत्यादि वादों के मूल में एक ही वाद है—लोक-कल्याण का। 'चित्राधार' की प्रारम्भिक कविताओं से ले कर कामायनी का अंतिम पंक्ति तक में यह भावना ओतप्रोत है। आरम्भ ही से कवि लोकमंगल की चिन्ता करते आ रहे हैं। मनुष्य वही है जो दूसरों के काम आये।

दुखी जनों के दुख को निवारि के
सुखी करे धर्म्म महा प्रचारि के।
आतिथ्य सेवाग्त मोद को भरे
मनुष्य सत्कर्म्म यज्ञ को करे॥ (अष्टमूर्त्ति)

मनुष्य की परिभाषा अथवा पहचान तो यह है—

जो अछूत का जगन्नाथ हो, कृषक करों का दृढ़ हल हो
दुखिया की आँखों का आँसू और मजूरों का बल हो।

अपनी विनय-प्रार्थनाओं में कवि जनकल्याण की अभिलाषा प्रगट करते हैं—

करुणानिधान, सुन्यो तेरी यह बान
नित दीन दुखियान पै तिहारी कृपा कोर है।

अथवा

दूर हो दुर्बलता के जाल,
दीर्घ निश्वासों का हो अंत। (धर्मनीति)
अरुण हो सकल विश्व अनुराग
करुण हो निर्दय मानव चित्त।
उठे मधुलहरी मानस में,
कूल पर मलयज का हो वास॥ (झरना)

वे मानते हैं कि क्षण भर की जन-सेवा पहरों की भक्ति से अच्छी है—

तोड़ कर बाधा बन्धन भेद,
भूल जा अहमिति का यह स्वार्थ।

... ...

दुखी पर करुणा क्षण भर हो
प्रार्थना पहरों के बदले। (झरना)

कवि आत्मकेन्द्रित, स्वार्थी, अहंकारी और व्यक्तिवादी मनुष्य को मिट्टी और लोथ से भी गया-बीता मानते हैं—

उस खल हृदय से कहीं अच्छी होती है श्यामा रजनी
जहाँ दुखी, प्रेमी, निराश—सब मीठी निद्रा में सोते।
... ...

और प्रेम, करुणा, गंगा यमुना की धारा वही नहीं
कौन कहेगा उसे महान ? न मरु मे उसमें अतर है ।

(प्रेम-पथिक)

प्रेम और करुणा का व्यवहार दीन, मलीन हृदय का सब ताप हर लेता है ।

प्रेमी के सर्वस्व अश्रुजल चिर दुःखी के परम उपाय ।
जीवन के कल्याण मार्ग में प्रति पग आगे बढ़ते चलो ।
किन्तु न परिमित करो प्रेम सौहार्द विश्वव्यापी कर दो ।

(प्रेम-पथिक)

मानव जीवन की सार्थकता परदुःखकातरता में है । सुखी वही है जो दूसरों को सुखी करता है—

दीन दुखियों को देख आतुर अधीर अति
करुणा के साथ उनके भी कभी रोते चलो ।
थके श्रमी जीवो के पसीने भरे सीने लग
जीने को सफल करने के लिए सोते चलो ।
... ...
सुखी कर विश्व, भरे स्मित सुखमा से मुख
सेवा सब की हो, तो प्रसन्न तुम होते चलो ।

(झरना)

औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को सुखी बनाओ ।

(कामायनी)

'आँसू' तक कवि अपने दुःख से भी दुःखी रहता है, लेकिन 'आँसू' के अंत में ही कवि का आत्मविस्तार इतना बढ़ जाता है कि 'अहं' की इति हो जाती है । कामायनी की सारी कथा मनु के आत्मविस्तार की कथा है । प्रसाद का कहना है कि परमात्मा की

सुन्दर सृष्टि को व्यक्तिगत मानापमान, दुःख, द्वेष और हिंसा से किसी को भी आलोड़ित करने का अधिकार नहीं है।

अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा। (कामायनी)

प्रसाद बौद्ध दर्शन के दुःखवाद और करुणावाद के प्रति इसीलिए आकृष्ट हुए कि उनमें लोककल्याण की भावना निहित है। मानव क्षणभंगुर है। ये जो सुख और विलास की सामग्रियाँ जुटा रहे हो, ये क्या बनी रहेंगी ?

सब जीवन बीता जाता है
धूप-छाँह के खेल-सदृश।

जीवन की क्षणभंगुरता को देख कर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है ! यही तो विषमता है। किन्तु, याद रहे

असि धारा पर धरा हुआ सुख,
उससे कैसा नाता है। (जनमेजय का नागयज्ञ)

मानव जीवन दुःखमय है

सखी री ! सुख किसको कहते हैं ?
बीत रहा है जीवन सारा केवल दुःख ही सहते ! (विशाख)

किन्तु, प्रसाद इस दुःखभरे संसार से भाग नहीं जाते। उनका तो विश्वास है कि करुणा से इस नरक को स्वर्ग बनाया जा सकता है।

निष्ठुर आदि सृष्टि पशुओं की
विजित हुई इस करुणा से।
मानव का महत्त्व जगती पर
फैला अरुणा करुणा से॥ (अजातशत्रु नाटक)

करुणा कादम्बिनी बरसे
दुःख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित हो सरसे।
(राज्यश्री नाटक)

शीतल हो ज्वाला की आँधी करुणा के घन छहरे,
दया दुलार करे पल भर भी विपदा पास न ठहरे।
(स्कन्दगुप्त नाटक)

बुद्ध का क्षणभंगुरतावाद और दुःखवाद प्रसाद को प्रेम, सौहार्द और करुणा के लिए प्रेरित करता है। 'धर्मनीति' शीर्षक कविता में उन्होंने स्पष्टतः कहा है कि मानव दुःखी और अशान्त है, धर्म वह है जो उसे आनन्द दे, उसके दुःख के अन्धकार को दूर करे। 'एक घूँट' नाटक में उन्होंने घोषणा की है कि दुःख के नाश का उपाय सोचना ही पुरुषार्थ है। आनन्द जीवन का लक्ष्य है, सर्वोच्च प्राप्य है। संसार का समस्त ज्ञान, समस्त कर्म आनन्द के लिए ही प्रयत्नशील होना चाहिए। यह आनन्द भेदभाव के विस्मरण, सामरस्य, सेवा, त्याग आदि से उत्पन्न हो सकता है। सुख-दुःख, व्यक्ति और समाज, शासक-शासित, अधिकारी-अधिकृत, शिव और शक्ति, विराग और अनुराग, सम और विषम, पुरुष और प्रकृति सब मे समरसता आ जाने से आनन्द की प्राप्ति होती है।

नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि समान।
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणिगण द्युतिमान। (कामायनी)

प्रसाद नियतिवादी थे। उनकी समस्त कृतियों में किसी अदृष्ट शक्ति, भाग्य-लिपि अथवा प्रकृति की सत्ता को स्वीकार किया गया है। जो होना है सो हो कर ही रहेगा। कब क्या होगा कोई नहीं जानता।

कौन उठा सकता है धुँघला पट भविष्य का जीवन में ?

(प्रेम-पथिक)

मनुष्य क्या है ?—प्रकृति का अनुचर और नियति का दास या उसकी क्रीड़ा का उपकरण। नियति सम्राटों से भी प्रबल हैं।

इस नियति नटी के अति भीषण
अभिनय की छाया नाच रही। (कामायनी)

नचती है नियति नटी-सी
कन्दुक - क्रीड़ा सी करती।
इस व्यथित विश्व आँगन में
अपना अतृप्त मन भरती। (आँसू)

जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलता है। मनुष्य केवल अतीत का स्वामी है, भविष्य का तो वह अनुचर है।

नियतिवाद प्रसाद-काव्य के पाठक को साहसी बनाता है। जैसा जिसके भाग्य में है जब वह हो कर ही रहेगा, तो फिर वह कायर हो कर क्यों बैठ जाय—कर्म से क्यों विरक्त रहे ? नियति की डोरी पकड़ कर वह निर्भय कर्मकूप में कूद सकता है। नियति बल देती है। वह दुस्तर समुद्र को पार कराती है।

नियति चलाती कर्मचक्र यह।

प्रसाद गीता के निष्काम कर्म के हामी हैं। जो अपने कर्मों को ईश्वर का कर्म समझ कर करता है, वही ईश्वर का अवतार है। कर्म का अर्थ ही है यज्ञ, परोपकार, आत्मविस्तार। दूसरों के सुख से सुखी होना ही सत्कर्म है। भारतीय कर्मवाद ईश्वर-विश्वास की भित्ति पर खड़ा है। वर्तमान जनता में ईश्वर के प्रति अविश्वास बढ जाने से दुःख की वृद्धि हुई है। उस नटराज की अग्नि में सब दुःख भस्म हो जाते हैं। ईश-विश्वास से पुण्य का उदय होता है।

'ईशावास्यमिदं सर्वम्'—

जल-थल, मारुत, व्योम में जो छाया है सब ओर।

तभी तो यह संसार इतना आकर्षक है। तभी तो विश्व इतना सुंदर है।

उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है।

(प्रेम पथिक)

एवं जिसके हैं आराम प्रकृति-कानन ही सारे,
जिस मन्दिर के दीप इन्दु दिनकर औ तारे,
उस मन्दिर के नाथ को, निरुपम निरमम स्वस्थ को
नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व-गृहस्थ को।

आस्तिकता विश्वप्रेम उत्पन्न करती है, इससे समदृष्टि मिलती है और समदृष्टि से आनन्द की प्राप्ति होती है।

सब की सेवा न पराई वह अपनी सुख संसृति है।

(कामायनी)

प्रसाद अद्वैतनिष्ठ शैवभक्त थे। यही उनकी श्रेय-भावना का मूल रहस्य है।

प्रसाद-काव्य में अतीत-प्रेम, यथार्थमूलक आदर्शवादिता, और निराशा के बीच आशा का जो भाव है उसकी पृष्ठभूमि में भी लोक-कल्याण की चिन्ता है। भारत का अतीत अत्यन्त उज्ज्वल था, उसका स्मरण करके मन को संतोष होता है, आत्मा को चेतना-शक्ति मिलती है, गौरव और आत्मविश्वास प्रतिष्ठित होता है। अतीत के गड़े मुर्दे उखाड़ना ही प्रसाद का काम नहीं है, अतीत की पीठिका पर वर्तमान समस्याओं का समाधान उपस्थित करना उनका विशेष ध्येय रहा है। वर्तमान से उन्हें यथार्थ की भीषणता मिली, क्योंकि जिस युग में वे जिये, वह युग संघर्ष, आर्थिक विषमता, अत्याचार और शोषण का युग रहा है।

भुनती वसुधा, तपते नग,
दुखिया है सारा अग-जग
कंटक मिलते हैं प्रति पग
जलती सिकता का यह मग। (अशोक की चिता)

इसी प्रकार के यथार्थवादी चित्र कवि ने कानन-कुसुम, झरना, लहर और कामायनी की अनेक कविताओं में प्रस्तुत किये हैं। कामायनी वास्तव में आदर्शवादी काव्य है, तो भी उसमें युग की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ती है। 'संघर्ष', 'इड़ा', 'स्वप्न' आदि कुछ सर्गों में विशेषतया यथार्थवादी संकेत मिलते हैं, जैसे—नारी की समस्या, नागरिक सभ्यता और यन्त्र युग का परिणाम, विज्ञान और शक्ति का दुरुपयोग, भौतिक बल की शिक्षा देने वाली बुद्धिवादी सभ्यता, शासक और शासित का वैमनस्य, जीवन की विषमता, वर्णभेद की खाई, अधिकारों का दुर्व्यवहार, पारिवारिक अशान्ति, इत्यादि। यथार्थ की जानकारी प्राप्त करके ही जन-कल्याण की बात सोची जा सकती है, अमंगल के कारणों को जाने बिना उसका निवारण नहीं हो सकता। अतः प्रसाद के यथार्थ-चित्रण मे भी मानव श्रेय निहित है। उन्होंने निजी जीवन में देखा, और जगत् में भी पाया, कि संसार भर में विद्रोह, संघर्ष, हत्या, अभियोग, षड्यन्त्र और प्रतारणा है। उनकी अनेक कविताओं में निराशा और विषाद का स्वर मुखरित हुआ है। इसकी चर्चा पिछले प्रकरणों में यथास्थान की जा चुकी है। निराशा के क्षण सब के जीवन मे आते हैं, लेकिन प्रसाद निराशा-ग्रस्त नहीं हुए। उनकी श्रेयमयी रचनात्मक ज्ञानधारा ने निराशा की कालिमा को धो दिया। उनकी आशा विकल होते-होते बच गई। 'मुश्किलें इतनी पड़ीं हम पर कि आसा हो गईं।' विषाद नहीं रहा, 'सुख का कण' हो गया। वास्तव में निराशा अन्धकारमय वृत्ति है जिससे अकर्मण्यता उत्पन्न

होती है। आशा मानव मन की विधायक वृत्ति है। इससे आस्था का उदय होता है, सृजन को गति मिलती है, जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है।

वह कितनी स्पृहणीय बन गई
मधुर जागरण सी छविमान। (कामायनी)

प्रसाद के काव्य का यह भी श्रेय है कि निराशा में आशा का स्वर उभर कर आने लगता है।

नक्षत्र नहीं है कुहू निशा में, बीच नदी मे बेड़ा है।
"हाँ, पार लगेगा घबड़ाओ मत", किसने यह स्वर छेड़ा है?
(विशाख नाटक)

आशा ही आँसू बहाने वाले कवि को विश्राम प्रदान करती है।

आशा तरुवर दूर दिखाई
देता था। जिसकी छाया
देती थी सन्तोष हृदय को
उस मरुभूमि निराशा में। (प्रेम-पथिक)

प्रेय

यह आवश्यक नहीं है कि जो श्रेय हो वह प्रेय भी हो। सर्जन का चाकू श्रेय होते हुए भी प्रेय नहीं कहा जा सकता। मलेरिया के रोगी के लिए कुनीन का घोल श्रेय तो है, प्रेय नहीं है। यह भी आवश्यक नही है कि जो प्रेय हो वह श्रेय भी हो। रोगी का जी तो चाहता कि आइस-क्रीम खा ले अथवा हलवे का स्वाद ले, लेकिन इससे उसकी कितनी क्षति होगी, यह एक मूर्ख भी भली भाँति जानता है। किन्तु, प्रसाद-काव्य का श्रेय और प्रेय एक है। उदाहरण-स्वरूप प्रेम का वर्णन प्रायः सभी कवियों ने किया है, लेकिन उनका प्रेय कभी-कभी श्रेय की सीमा को लाँघ जाता है।

असंयत अथवा वासनामय चित्रण व्यक्ति अथवा समाज के लिए श्रेयस्कर नहीं रह जाता। प्रसाद का प्रेम सात्विक और उज्ज्वल है। प्रेम के प्रति व्यापक दृष्टिकोण कवि को आरंभ ही से प्रेरित करता आया है। 'प्रेम-पथिक' में प्रेम का उदात्त, अतीन्द्रिय और निर्मल रूप प्रस्तुत किया गया है। प्रेम दो हृदयों का मधुर मिलन है, लेकिन उसमें व्यक्तिगत भावनाएँ खो जाती हैं। 'आँसू' में भी आरंभ तो दो हृदयों के प्रेम से होता है, लेकिन इसका अवसान उदात्त भावना में होता है। इसका क्षेत्र असीम हो जाता है। श्रद्धा और मनु का प्रेम मानवमात्र के प्रेम में परिणत हो जाता है।

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।

(प्रेम-पथिक)

प्रेम उदार और अनन्त है, वह प्रेमियों को भी उदार और महान् बनाता है। उन्हें सारा विश्व प्रियतम जान पड़ता है।

प्रियतम-मय यह विश्व निरखना फिर इसको है विरह कहाँ
फिर तो वही रहा मन में, नयनों में, प्रत्युत जग भर में
कहाँ रहा तब द्वेष किसी से क्योंकि विश्व ही प्रियतम है।

(प्रेम-पथिक)

यही है प्रसाद का श्रेयमय प्रेय। प्रेम के विविध पक्षों पर प्रसाद जी ने बड़ी गम्भीरता से विचार किया है। उनका कहना है कि दो हृदयों का स्वाभाविक आकर्षण ही प्रेम का मूल है। मानव-हृदय की मौलिक भावना है प्रेम। प्रेम चतुर मनुष्यों के लिए नहीं, वह तो शिशु से सरल हृदयों की वस्तु है।

मिले दो हृदय अमल अछूते
दो शरीर, इक प्रान। (विशाख नाटक)

दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का प्रकाश होता

है। प्रेम इस पृथ्वी का नहीं रह जाता। जीवन के प्रभात का वह मनोहर स्वप्न विश्व भर की मदिरा बन कर व्यक्ति के जीवन का उन्माद हो जाता है। प्रेम में त्याग और आत्मोत्सर्ग की महत्ता है। प्रेम में स्वच्छता, स्वच्छंदता और गांभीर्य होना चाहिए, तभी प्रेम विकासोन्मुख होता है।

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग झलकता है। (कामायनी)

मनुष्य अपने त्याग से जब प्रेम को आभारी बनाता है तब उसका रिक्त कोप बरसे हुए बादलों पर पश्चिम के सूर्य के रत्नालोक के समान चमक उठता है।

यह है प्रसाद का चमत्कार कि उन्होंने निम्न काम-वासना को उच्च सांस्कृतिक प्रेम की कोटि तक पहुँचा कर जन-जन का प्रेय बना दिया।

विरह प्रेम का आवश्यक तत्त्व है। प्रेम की परख और हृदय की स्वच्छता के लिए विरह की पीड़ा और अश्रुधारा आवश्यक है।

हृदय द्रवित होता ध्यान मे भूत ही के
सब सबल हुए-से दीखते भाव जी के।

मिलन की घड़ियों की स्मृति मिलन से भी अधिक सुखकर होती है, क्योंकि उसमें वासना नहीं रह जाती।

प्रेम की मादकता सारे दुःखों को मुस्कुराते हुए सह लेने की शक्ति देती है। सच्चे प्रेम में एक सुधा होती है। अपने प्रिय चंद्र का हृदय मे ध्यान करने से चकोर जलते हुए अंगारे भी चुग लेता है।

है चन्द्र हृदय में बैठा
उस शीतल किरण सहारे
सौन्दर्य सुधा बलिहारी
चुगता चकोर अगारे।

प्रसाद का लौकिक प्रेम और विरह क्रमशः अलौकिक धरातल तक जा पहुँचा है। प्रेम और ईश्वर-संबंधी कविताओं की विकसित अवस्था ही रहस्यवादी काव्य का रूप है। लोग 'प्रथम प्रभात' को प्रसाद की पहली रहस्यवादी कविता बताते है, पर मकरन्द-विन्दु (व्रजभाषा में) स्पप्टतः रहस्यवादी है। 'प्रभो' और 'करुणा-कुंज' कुछ-कुछ रहस्यात्मक है। 'तुम्हारा स्मरण', 'भाव-सागर', 'मिल जाओ गले', 'नहीं डरते' भी रहस्यवादी रचनाएँ हैं। 'कानन-कुसुम' में कवि अनेक कविताओं में लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप देने में अग्रसर हैं। वास्तव में यहीं से रहस्यवाद का आरम्भ होता है।

'प्रेम-पथिक' में निम्नलिखित पंक्तियों का संकेत देखिए—

जीवन-पथ मे सरिता होकर उस सागर तक दौड चलें
जहाँ अखड शान्ति रहती है वहाँ सदा स्वच्छन्द रहें।

'झरना' मे 'खोलो द्वार', 'चिह्न', 'कब', 'प्रत्याशा', 'मिलन', 'स्वप्नलोक' और 'दर्शन' रहस्यवादी कविताएँ है।

'लहर' में रहस्यवादी गीतो की संख्या अधिक है—जैसे 'अरे कही देखा है तुमने', 'निज अलकों के अंधकार में', 'निधरक तूने ठुकराया तव', 'मधुप गुनगुना कर कह जाता', 'मधुर माधवी संध्या मे', 'मेरी आँखों की पुतली में', 'ले चल वहाँ भुलावा दे कर', 'हे सागर संगम, हे अरुण नील', इत्यादि। नाटकों मे भी अनेक रहस्यवादी गीत है। 'आँसू' की लौकिक व्यंजना को संपूर्ण रूप में अंतिम अंश मे रहस्यवादो अर्थ दे दिया गया है। 'कामायनी' के काम, आशा और आनन्द सर्ग में उस 'चेतन पुरुप पुरातन' के प्रति प्रेम-भावना प्रगट की गई है।

नारी के विपय में प्रसाद की भावना अत्यंत उच्च है। नारी पुरुप के लिए वरदान है। वह मानव शक्ति का संचालन करती है।

कठोरता का उदाहरण है पुरुप, और कोमलता का निदर्शन है नारी। पुरुप क्रूरता है तो स्त्री करुणा है—जो अन्तर्जगत् का उच्चतम विकास है, जिसके वल पर समस्त सदाचार टहरा है, और जो पुरुष को उत्साहित कर के उन्नत करती है; उसे स्नेह, सहनशीलता और सदाचार का पाठ पढ़ाती है। मनु और मानव का कल्याण श्रद्धा ही से हो पाया है। नारी पुरुप के अभावों को परिपूर्ण करने का उष्ण प्रयत्न और शीतल उपचार है। स्त्री का हृदय प्रेम का पालना है।

नारी माया ममता का बल
वह शक्तिमयी छाया शीतल। (कामायनी)

इसीलिए नारी के अभाव में पुरुष का हृदय मरुभूमि के समान है। नारी भी पुरुष के विना विटपविहीन वेलि है। नारी का बल है पुरुष और पुरुष का वल है नारी। नारी जिससे प्रेम करती है उसपर अपना सर्वस्व वार देने को प्रस्तुत रहती है। उसके बलिदान का मूल्य नहीं आँका जा सकता।

नारी का सर्वोत्तम रूप 'माता' का है।

प्रसाद सौन्दर्य के उपासक थे। उन्हें सृष्टि मे सौन्दर्य और आनन्द विखरा हुआ दिखाई देता है—

स्निग्ध शांत गम्भीर महा सौंदर्य सुधा सागर के कण
ये सब बिखरे हैं जग मे विश्वात्मा ही सुदरतम है।

प्रकृति की प्रत्येक धड़कन में सौंदर्य है।

जीवन धारा सुन्दर प्रवाह।
सत सतत, प्रकाश सुखद अथाह। (कामायनी)

किसी वस्तु में, प्रकृति के किसी पदार्थ में यहाँ तक कि प्रलय और झंझा में भी, नर और नारी में, और मन के सूक्ष्मतम भावों में जहाँ भी सौन्दर्य का लेश है उसकी अनुभूति में तादात्म्य प्राप्त करना प्रसाद

के कवि-हृदय का सहज गुण है और उस सौन्दर्य की चित्रमय अभिव्यक्ति द्वारा पाठक के हृदय को रस-प्लावित करना उनके काव्य की विशेष सफलता है। आरम्भिक कृतियों में कवि बाह्य सौन्दर्य की ओर अधिक आकृष्ट हैं, किन्तु क्रमशः उनकी सौन्दर्यानुभूति स्थूल से सूक्ष्म की ओर और बाहर से अन्तर् की ओर प्रवृत्त होती रही है। 'चित्राधार' और 'कानन-कुसुम' में कुमुद, कुमुदिनी, सरोज, रसाल, रसालमंजरी, सिरिस-सुमन, कानन, वसन्त, शरत् पूर्णिमा, वर्षा मे नदीकूल, सूर्य, चन्द्र, रजनी, प्रभात, संध्या, इन्द्रधनुष, बादल, मलयानिल, आदि के चित्रों में बाहरी सौन्दर्य मिलता है। 'झरना' से कवि प्रकृति के अन्तर् में प्रवेश करते हैं। उन्हें लगता है कि 'बात कुछ छुपी हुई है गहरी।' 'नव-वसन्त' में बाह्य प्रकृति वर्णित है, 'प्रथम प्रभात' में छुपी हुई बात तक पहुँचने का प्रयत्न किया गया है। इसके बाद की कविताओं में भावमयी प्रकृति का वर्णन अधिक मिलने लगता है। 'झरना' में वसन्त, पतझड़ (पाई बाग), किरण, झील आदि के वर्णन पूर्णतया कवित्वपूर्ण हैं। नाटकों के प्रायः गीतों में प्रकृति का अन्तर्-सौन्दर्य वर्णित है। 'लहर' और 'कामायनी' के गीतों में यह भावमयी कवित्वपूर्ण छायावादी शैली उत्कृष्ट रूप में पाई जाती है। पिछले प्रकरणों में प्रकृति-संबंधी कविताओं के अध्ययन में इस शैली के उदाहरण देखे जा सकते हैं।

रूप-वर्णन में प्रमुख स्थान नारी का है। 'चित्राधार' में उर्वशी के अंग-प्रत्यंग का वर्णन हुआ है। 'वन-मिलन' में वनमाला के और 'प्रेमराज्य' में ललिता के सौन्दर्य का चित्रण है। इसमे कोई मौलिकता दिखाई नहीं देती। शैली परम्परामुक्त है। 'झरना' का भी एक चित्र उसी तरह का है—

ये बंकिम भ्रू-युगल कुटिल कुंतल घने

नील नलिन से नेत्र-चपल मद से भरे
सुन्दर गोल कपोल सुढर नासा बनी।

इत्यादि।

'आँसू' मे प्रिय के नखशिख का जो वर्णन हुआ है उसमे प्राचीनता के साथ नवीनता मिलती है। किन्तु, कामायनी के चित्र अधिक भावमय और उत्कृष्ट हैं। श्रद्धा और इड़ा का रूप-सौन्दर्य पाठक के मन में उल्लास और आनन्द की लहर दौड़ा देता है। इसकी व्याख्या पिछले प्रकरण में की गई है। ऐसे चित्र हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलते। रूप-वर्णन में प्रसाद से अच्छा चित्रकार दुर्लभ है। उन्होंने अपने काव्य में सौन्दर्य के उज्ज्वल रूप की प्रतिष्ठा की है और उसे मधुर भावनाओं से ओतप्रोत किया है। नारी के बाह्य सौन्दर्य के दृश्य बहुत सी कविताओं में दिये गये हैं। 'जल विहारिणी', 'रमणी-हृदय', 'देव बाला' आदि में अन्तर का सौंदर्य भी चित्रित किया गया है। दैहिक सौन्दर्य से अधिक श्रेय शील-सौन्दर्य को माना गया है।

पुरुष के सौन्दर्य को बहुत कम कवियों ने देखा है। 'अयोध्या का उद्धार' मे सोये राजकुमार के रूप का और 'प्रेमराज्य' में बालक चन्द्रकेतु के रूप का वर्णन तो सामान्य कोटि का है, किन्तु 'कामायनी' में मनु का चित्रण बहुत अच्छा बन पाया है—

अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का
होता था जिन में संचार
चिंता-कातर वदन हो रहा
पौरुष जिस में ओत-प्रोत
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत

नर का सौन्दर्य पौरुष में है, नारी का शील में।

रूप-चित्रण से अधिक सूक्ष्म भाव-चित्रण है। 'कामायनी' में जो आशा, ईर्ष्या, काम, लज्जा, चिन्ता, वासना, निर्वेद आदि भावों का चित्रण हुआ है उसे प्रसाद का सर्वोत्कृष्ट प्रेय कहा जा सकता है।

कवि का कलापक्ष भी उनकी प्रेममयी रचनात्मक वृत्ति है। प्रसाद के अनुसार छायावाद भावों की सूक्ष्म व्यंजना, कथन की वक्रता, स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति और नवीन पद-अर्थ-मयी शैली का नाम है। उन्होंने एक निबन्ध में कहा है कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'छाया' का अर्थ है मोती की आभा। बात भी ठीक है कि छायावाद की कोमलता और सुंदरता छाया के समान है और वह मोती की आभा की तरह प्रेय लगता है। काव्य-रूप, छंद, रस, अलंकार, भाषा, आदि की कलना और सज्जा में कवि ने प्रेय का विशेष ध्यान रखा है। प्रसाद की ब्रजभाषा की कविताओं में छंद, अलंकार और काव्यरूप की नवीनता भले ही न हो, भावाभिव्यक्ति की मौलिकता अवश्य पायी जाती है। ये कविताएँ प्रायः छोटी हैं—४ पंक्तियों की कविताएँ अधिक हैं, १५-२० पंक्तियों की कविताएँ बहुत ही कम। सवैया, कवित्त, छप्पय, पद आदि छंदों का व्यवहार हुआ है। परम्परागत अलंकारप्रियता तो नहीं मिलती, लेकिन अलंकार-शैली वही है। खड़ी बोली हिन्दी की कविताओं में विकास की कई अवस्थाएँ हैं। दो पंक्तियों के थियेटरी ढंग के पद नाटकों में मिलते हैं। इनमें उर्दू का प्रभाव स्पष्ट है। 'विभो', 'वेदने ठहरो', 'मन्दिर', 'करुण-क्रंदन', 'महाक्रीड़ा', 'नव-वसन्त', 'जलदावाहन', 'सरोज', 'जलविहारिणी', 'उपेक्षा करना', 'पावस प्रभात' आदि कविताओं में उर्दू का प्रभाव देखा जा सकता है। इनमें न केवल उर्दू की बहरों का बल्कि उर्दू की विशिष्ट व्यंजना-शैली का प्रयोग भी किया गया है। 'अव्यवस्थित' '[illegible]

'आदेश' आदि कविताओं में बँगला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। त्रिपदी और पयार छंद बँगला से अपनाये गये हैं। 'आँसू' मे फारसी और उर्दू का गहरा प्रभाव है। सरोज, मोहन, करुणालय में रोहिताश्व की प्रार्थना, मेरी कचाई, हमारा हृदय, प्रत्याशा, अर्चना, स्वभाव, वसन्त-राका, दर्शन, सुखभरी नींद, स्वप्नलोक, रमणी-हृदय, महाकवि तुलसीदास, नमस्कार, खोलो द्वार, प्रियतम, पाई बाग, गान, दीप, आदि चतुर्दशपदियाँ हैं जिनके रूप की प्रेरणा अंग्रेजी से आई है। ये कविताएँ प्रायः अरिल्ल छंद में अथवा रोला और उल्लाला के मेल से बनाये नये छंद में लिखी गई हैं। चौपाई के कई रूपों का व्यवहार मिलता है। ताटंक का प्रयोग भी हुआ है। दो छंदों के मेल से एक नये छंद की सृष्टि प्रायः कविताओं में की गई है। 'आँसू' का छंद हिन्दी साहित्य में बिल्कुल नया था। यह इतना प्रिय हुआ कि बीसियों कवियों ने उसको अपनाया। प्रसाद जी ने कामायनी के आनन्द सर्ग में भी इसका प्रयोग किया है। सामान्यतः कामायनी में ऐसे छंदों को लिया गया है जिनको पहले सफलतापूर्वक व्यवहृत किया जा चुका था। कुछ नये छंद भी हैं, जैसे पादाकुलक, रूपमाला और सार। कई कविताओं में असम मात्रिक छंद प्रयुक्त हुआ है, जैसे—

मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी
न है उत्पात, छटा है छहरी
मनोहर झरना।

अतुकान्त कविताओं की संख्या भी कम नहीं है। प्रेम-पथिक, महाराणा का महत्त्व, करुणालय, शिल्प-सौंदर्य, शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण, पेशोला की प्रतिध्वनि, प्रलय की छाया, आदि आख्यानात्मक कविताओं के अतिरिक्त छोटी-बड़ी और भी कविताएं हैं जिनमें अतुकान्त और भिन्नतुकान्त शैली का प्रयोग मिलता है।

प्रसाद-काव्य का विशिष्ट और सर्वोत्कृष्ट अंग हैं गीत। नाटकों और काव्यसंग्रहों के गीतों की संख्या २०० के लगभग है। कामायनी के गीत और 'आँसू' की गीतियाँ अलग हैं। इस प्रकार गीत अन्य कविताओं से अधिक है। इनका साहित्यिक स्तर भी अन्य कविताओं से ऊँचा है। अर्थगौरव, भाषा-लालित्य, मार्दव, गाम्भीर्य, और रसमयता की दृष्टि से ये गीत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं; इनका अनुभूति-तत्व इतना प्रबल है कि इन्हे विश्व-साहित्य में उच्चकोटि का काव्य माना जा सकता है।

प्रसाद छायावाद के प्रवर्त्तक थे। उनकी छायावादी कलात्मकता—अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता, कल्पना की विशालता और नवीन शब्दार्थ योजना—उनके सारे काव्य में व्याप्त है। उनकी कला मे मौलिकता भरपूर पाई जाती है। किन्तु, वे हिन्दी साहित्य की परम्परा के साथ भी बँधे दिखाई देते हैं। न केवल ब्रजभाषा की कविताओं में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ झलकती हैं, बल्कि 'आँसू' और 'कामायनी' तक में रूढ़ छंदों और अलंकारों का प्रयोग मिलता चलता है। 'आँसू' में अनेक उपमान रूढ़ है, जैसे केशों के लिए जंजीर, ओठों के लिए विद्रुम, दाँतों के लिए मुक्ता, मुख के लिए कमल, कान के लिए कमल, भौहों के लिए अनंग के धनु की शिंजिनी, स्तन के लिए कुंभ इत्यादि। 'कामायनी' में भी कंज (कमल, अम्बुज, जलज), कदम्ब, केतकी, चंदन, कोकिल, गज, जुगनू, मधुप, मीन, मृग, आदि का प्रयोग उपमान रूप मे हुआ है। किंतु, प्रायः इन उपमानों को भी इतने सुंदर और नवीन ढंग से सँजोया गया है कि प्रसाद की प्रतिभा झलक जाती है। आरम्भिक कृतियों में परम्परागत अलंकार-योजना अधिक व्यापक है, इसपर भी यत्र-तत्र नवीन व्यंजनायुक्त पंक्तियाँ मिल जाती हैं। उदाहरण—

१. सरिता दुकूलन में तपसी बने से तरु।

२. चमकि गयो जो चपला-सम यह प्रियतम विरह तिहारो ।

'कानन-कुसुम' की अधिकतर कविताएँ तो इतिवृत्तात्मक हैं, लेकिन कुछ एक में सुंदर भाव-कल्पना और नवीन अलंकार-विधान दर्शनीय है । उदाहरण—

१. मनोवृत्तियाँ खग-कुल सी थीं सो रही,
अन्तः करण नवीन मनोहर नीड में ।
नील गगन सा शान्त हृदय भी हो रहा
बाह्य आन्तरिक प्रकृति सभी सोती रही ।

(प्रथम प्रभात)

२. आर्यवृन्द के सुन्दर सुखमय भाग्य सा (भरत)

३. कंस-हृदय की दुश्चिन्ता सा जगत में
अन्धकार है व्याप्त, घोर घन है उठा ।

यह बात उल्लेखनीय है कि 'कानन-कुसुम' में उपमा का प्राधान्य है । 'झरना' में उपमा और रूपक का प्रयोग समान रूप से हुआ है । 'आँसू' और 'लहर' में उपमा, रूपक और प्रतीप का, एवं 'कामायनी' में पुनः उपमा और रूपक का अलंकार-विधान उत्तरोत्तर परिष्कृत रूप में हुआ है । उत्प्रेक्षा, प्रतीप और समासोक्ति के उदाहरण कहीं-कहीं मिल जाते हैं; पर व्यापक रूप से उपमा और रूपक सारे प्रसाद-काव्य में पाये जाते हैं । इनके प्रयोग में कवि की कल्पना की विशालता और सौंदर्यबोध का परिचय मिलता है । कोरा वाग्वैचित्र्य अथवा अभिव्यक्ति की वक्रता कवि को अभीष्ट नहीं है । एक निबन्ध में उन्होंने कहा भी है कि "उपमा और शब्द-वैचित्र्य से कोई कवि का आसन नहीं पा जाता ।" उसमें प्राकृतिक और मानवीय भावों का सुंदर चित्रण करने की क्षमता होनी चाहिए । अपनी भावना को ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिए कवि उपमा और रूपक का सहारा लेता है । प्रसाद की उपमाओं और उनके रूपकों

मे रूप-साम्य की अपेक्षा धर्म-साम्य का अधिक ध्यान रहता है। उनके उपमानों में विविधता पाई जाती है। प्राय: उपमान नवीन हैं। जो नवीन नहीं भी हैं, उनका प्रयोग नये वातावरण में और नये ढग से हुआ है।

'झरना' का अलंकार-विधान हमे सहज और स्वाभाविक लगता है। 'आँसू' में इसका सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ गया है, लेकिन कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ अलंकार-योजना इतनी अपरिचित है कि उसको समझने में कठिनाई होती है। इस बात की चर्चा हम चौथे प्रकरण में कर चुके है। 'लहर' के विधान तनिक क्लिष्ट और धूमिल जान पड़ते हैं। आख्यानक कविताओं मे अलंकार-प्रयोग अधिक स्पष्ट है, लेकिन फुटकर कविताएँ अलंकारों के बोझ से दबी हैं। उनमें रसमयता कम है क्योंकि अलकार इतने अस्पष्ट है कि भाव-बोध में बड़ी बाधा पड़ती है। 'कामायनी' में कवि पुनः सँभल गये हैं। वे जानते थे कि अलंकारों को साध्य बना लेने का परिणाम भयंकर होता है। रीतिकालीन काव्य का प्रमाण उनके सामने था। 'कामायनी' प्रसाद के सुन्दरतम अलंकार-रत्नों की मंजूषा है।

प्रसाद की अलंकार-योजना का एक गुण यह भी है कि इनके द्वारा वे अपने चित्रों में सजीवता ला सके हैं। चित्रमयता काव्य का विशेष लक्षण माना गया है। प्रसाद को इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

अलंकार-विधान मे प्रसाद ने प्राय: मानवीय भावों और व्यापारों का स्पष्टीकरण प्रकृति के माध्यम से और प्रकृति की व्याख्या मानव-जीवन से उपमान ले कर की है। जैसे—

क— १. हृदय हमारा फूल रहा था कुसुम सा।
 २. मनोवृत्तियाँ खग-कुल सी थीं सो रही।
 ३. जीवन मे मृत्यु बसी है जैसे बिजली हो घन में।

४. स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो।

५. तुम अजस्र वर्षा सुहाग की
और स्नेह की मधुर रजनी।

६. खिली स्वर्ग मल्लिका की सुरभित वल्लरी-सी
गुर्जर के थाले में मरन्द वर्षा करती मैं।

ख— १. (बादल के टुकडे कैसे हैं ?)
अब उसके कुछ बचे अंश आकाश में
भूले भटके पथिक सदृश हैं घूमते।

२. अंधकार-पारावार गहन नियति-सा।

३. (उषा ने)
अरुण अपांगों से देखा, कुछ हँस पडी
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी।

४. मृत्यु अरी चिर निद्रे तेरा
अंक हिमानी सा शीतल।

५. अंतरिक्ष में अभी सो रही है ऊषा मधुबाला।

६. रजनी रानी की बिखरी है म्लान कुसुम की माला।

७. अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा-घट ऊषा नागरी।

कभी-कभी प्रकृति के एक पदार्थ का उपमान प्रकृति से ही लिया जाता है।

१. (*मानसरोवर*) मरकत की वेदी पर ज्यों
रक्खा हीरे का पानी।

२. नीचे जलधर दौड रहे थे
सुन्दर सुर-धनु माला पहने ;
कुंजर-कलभ सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने

३. तारे जूही से खिलते

प्रतीक भी रहस्यवादी-छायावादी काव्य के आधार माने गये है। प्रसाद-काव्य में प्रतीक-योजना का आरंभ 'झरना' की कतिपय कविताओं से होता है। 'वसन्त की प्रतीक्षा', 'दीप' और 'किरण' प्रतीकात्मक कविताएँ हैं। इनमें मल्लिका, कोकिल, मिलिन्द, कुंज, वसन्त, लहर, तरु, छाया, खग, किरण, सुमन, आदि शब्दों का प्रतीकार्थ स्पष्ट है। 'लहर' में अनेक नये प्रतीक व्यवहृत हुए हैं। 'अरे आ गई है भूली सी यह मधु ऋतु दो दिन की' से आरंभ होने वाले गीत में किसलय, अंकुर, मलयानिल, उषा, कुसुम, नलिन, जलधि, निशि, शशि-किरण प्रतीकार्थक हैं। संग्रह की प्रथम कविता 'उठ उठ री लघु लोल लहर' प्रतीकात्मक है। 'हे सागर संगम अरुण नील' में जलधि, लहर, किरण, शैल-बालिका, हरित कानन, व्योम आदि शब्द प्रतीक हैं। 'उस दिन जब जीवन के पथ में' में छिन्न पात्र, मधुभिक्षा, अनजाने निकट नगर में इत्यादि भी प्रतीक हैं। 'आँसू' के प्रतीक-विधान की चर्चा हम कर आये हैं। 'कामायनी' काव्य पूरा का पूरा प्रतीकात्मक है।

प्रसाद-काल के काव्य की एक विशेषता यह भी है कि उसमें खड़ी बोली हिन्दी का परिष्कृत और विकसित रूप मिलता है। खड़ी बोली को साहित्यिक रूप देने में प्रसाद जी का योगदान बहुमूल्य है। उन्होंने संस्कृत के शब्द-भंडार को अपनी रचनाओं में अपनी आवश्यकता के अनुसार भरने, बँगला, अंग्रेजी और उर्दू की शैली को हिन्दी में रूपान्तरित करने और प्रचलित शब्दों को नये अर्थ देने में भरसक निष्ठा और तत्परता के साथ कार्य किया। उनकी शैली में स्वर, लय, शब्द और अर्थ का अपूर्व संतुलन है। चित्रमयता, मूर्तिमत्ता, संगीतात्मकता, सांकेतिकता और भाव-प्रवणता उनकी प्रौढ़ भाषा की विशेषताएँ हैं। किन्तु, आरंभिक

कृतियो में भापा बहुत समर्थ नहीं है। व्याकरण की अशुद्धियाँ जगह-जगह मिलती हैं। उदाहरण (कानन-कुसुम से)—

१. जीव उगिलता है।

२. चन्द्रिका उज्ज्वल बनाता है उन्हें सुख-पुंज में।

३. प्रसन्न हैं हम उसमें, तेरी
प्रसन्नता जिसमें होवे।

४. सहज झोंके से कभी दो डाल को ही मिला दिया।

(झरना से)—

५. धो डाले हैं इनको प्रियवर, इन आँखों से आँसू ढार।

इस प्रकार के अशुद्ध प्रयोग उनकी प्रौढ़तम कृति में भी ढूँढ़े से मिल जाते हैं। अनेक लुंज वाक्य, विभक्ति-लोप, अशुद्ध लिंग-प्रयोग, अशुद्ध वचन-प्रयोग और अपूर्ण कथन 'कामायनी' में भी प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं भापा बोझिल और दुरूह है। प्रसाद-गुण की कमी बहुत जगह खटकती है। प्रसाद ने व्याकरण की कभी चिन्ता नहीं की। शैली की चिन्ता उन्हें अधिक रहती थी। शब्द-चयन का, शब्दार्थ का और शब्दों की सजावट का उन्हें पूरा ध्यान था। इसके निदर्शन 'आँसू' और 'कामायनी' में विशेप रूप से मिलेंगे; अन्य संग्रहों में फुटकर कविताएँ होने के कारण भापा की एकरूपता नही है। 'झरना' और 'लहर' में अच्छे-बुरे हर तरह के नमूने मिल जाते हैं। प्रयत्न करने पर 'कानन-कुसुम' में भी भापा-सौप्ठव-युक्त पंक्तियाँ मिल जायँगी। प्रवाहमयता और भावपूर्णता की दृप्टि से प्रबन्धात्मक कविताओं में प्रसाद को अधिक सफलता मिली है। सामान्यतः प्रसाद के प्रेय का भापा-पक्ष बहुत पुप्ट नहीं कहा जा सकता। पंत और महादेवी के काव्य की भाषा अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर. प्र और मधुर है।